सचित्र

घरेलू डाक्टर

डा० कालीचरन
A.R.S.H. (London)
डा० जे० पी० सक्सेना
M.B.B.S., M.D.

घरों में प्रायः होती रहने वाली बीमारियों के उत्पन्न होने के कारण तथा उनकी आसान घरेलू चिकित्सा

घरेलू डाक्टर

घरों में रोजाना होते रहने वाले सामान्य रोगों के उत्पन्न होने के कारण, रोगों से बचने के उपाय और उनकी सरल घरेलू चिकित्सा

लेखक

डा० कालीचरन

A.R.S.H. (London)

डा० जे० पी० सक्सेना

M.B.B.S., M.D.

फोन : 212 9875

मेडीकल प्रेस (प्रकाशक)

H. No. 720, गली डेसू ट्रांसफार्मर, छज्जूपुर मार्ग,

बाबरपुर, शाहदरा, दिल्ली-110032

© कापीराइट मेडीकल प्रेस

संस्करण : 1998

मूल्य : 22.00

प्रकाशक

मेडीकल प्रेस

H. No. 720, गली डेसू ट्रांसफार्मर, छज्जूपुर मार्ग,
बाबरपुर, शाहदरा, दिल्ली-110032

मुद्रक :

प्रताप पुरा, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

भूमिका

यह पुस्तक मूल रूप से उन स्थानों पर रहने वाले व्यक्तियों की सहायता के लिए लिखी गई है जहां आसपास में हस्पताल नहीं हैं अथवा जिन जगहों पर डाक्टर नहीं हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में बताया है कि विभिन्न प्रकार के रोग किन कारणों से उत्पन्न होते हैं, उन रोगों से किस प्रकार बचाव किया जा सकता है और रोगग्रस्त हो जाने पर किन उपायों तथा औषधियों द्वारा अपने घर पर ही कम खर्च में और कुछ दशाओं में डाक्टर की अपेक्षा ज्यादा प्रभावशाली ढंग से रोगों का इलाज किया जा सकता है। उदाहरण के लिए कुछ रोगों में औषधि सेवन के साथ-साथ व्यायाम अथवा अन्य प्राकृतिक उपायों का प्रयोग करना भी आवश्यक होता है। यह बात विशेष रूप से श्वास सम्बन्धी रोगों में देखी जाती है। इन रोगों में डाक्टर रोगी को केवल दवा दे देते हैं, इन उपायों को नहीं बताते अतः रोगी धन खर्च करने के बावजूद कष्ट उठाता रहता है। लेकिन यदि वह चिकित्सा के साथ-साथ प्रस्तुत पुस्तक में बताए गए इस प्रकार के उपायों का प्रयोग करता रहे तो उसे रोग से कष्ट कम उठाने पड़ते हैं अथवा वह शीघ्र रोग मुक्त हो सकता है। इस दृष्टि से यह पुस्तक डाक्टरों का भार भी काफी हलका कर देती है।

इतना सब होते हुए भी यह पुस्तक एक प्रशिक्षित और अनुभवी डाक्टर का स्थान नहीं ले सकती अतः जहां रोग जटिल हो या जहां डाक्टर पास में ही हो तो उसी से उपचार कराना चाहिए।

पुस्तक में बहुत से आयुर्वेदिक नुस्खे भी दिए गए हैं। इनमें से कुछ नुस्खे **वैद्य सहचर, आरोग्य प्रकाश, रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह** जैसे मानक-ग्रन्थों से लिए गए हैं। विज्ञान परिषद द्वारा प्रकाशित **घरेलू डाक्टर** पुस्तक से भी सहायता ली गई है। 'ऐमरजेन्सी चिकित्सा' अध्याय के कुछ चित्र दी सेन्ट्जान्स ऐम्बुलेन्स एसोसिएशन के प्रकाशनों से लिए गए हैं। हम इन समस्त पुस्तकों के लेखकों व प्रकाशकों के आभारी हैं।

—डा० कालीचरन

—डा० जे० पी० सक्सेना

सैक्स एफीशिएंसी ट्रेनिंग कोर्स—डा० कालीचरन
मॉडर्न ऐलोपैथिक ट्रीटमेण्ट (बड़ा साइज)—डा० कालीचरन व
डा० शिव कुमार व्यास
ऐलोपैथिक निदान और चिकित्सा—डा० विजय रिख,
डा० राजेश भाटिया, डा० इच्छपुजानी,
इन्जैक्शन चिकित्सा—डा० विजय रिख
स्त्री रोग एवं प्रसूति विज्ञान—डा० विजय रिख
पुरुषों के रोग एवं आधुनिक चिकित्सा—डा० कालीचरन,
डा० विजय रिख, जे० पी० सक्सैना व डा० विश्वप्रकाश
यौगिक चिकित्सा —शिव गोविन्द त्रिपाठी
मेडीकल व्यायाम—डा० एडविन फ्लैटो
55 चमत्कारी जड़ी-बूटियां—शिव गोविन्द त्रिपाठी
त्वचा और बालों के रोग—डा० विश्व प्रकाश
ऐलोपैथिक पाकेट गाइड—डा० महेश्वर प्रसाद उमाशंकर
मेडीकल बैक्टीरियोलोजी (जीवाणु विज्ञान)—डा० कालीचरन
भोजन द्वारा पूर्ण स्वास्थ—डा० विश्व प्रकाश
लहसुन महाराजा—डा० कालीचरन
सूर्य चिकित्सा—शिव गोविन्द त्रिपाठी
यौन दुर्बलता और उसका इलाज—डा० विजय रिख
शीघ्रपतन कारण और उपचार—पी० के० प्रदीप
नपुंसकता कारण और उपचार—डा० गोलीवर M. D.
कामशक्ति वर्धक औषधियां—डा० कालीचरन
सैक्स की मेडीकल समस्याएं—डा० कालीचरन
स्तन सौन्दर्य कैसे बढ़ाएं—डा० कालीचरन
घरेलू डाक्टर—डा० कालीचरन
मैरीज गाइड—डा० कालीचरन
कद लम्बा कैसे करें—डा० चार्ल्स डब्लू. लोनार्ट M. D.
चालीस की आयु के बाद यौन जीवन—डा० लूई पी० साक M.D.
उपवास चिकित्सा—डा० रामचन्द्र वर्मा
पागल कुत्ते के काटे का इलाज—डा० राजेश भाटिया
डा० रतनलाल इच्छपुजानी

मेडीकल प्रेस (प्रकाशक)

H. No. 720, गली डेसू ट्रांसफार्मर, छज्जूपुर मार्ग,
बाबरपुर, शाहदरा, दिल्ली-110032

विषय-सूची

1.	रोग उत्पन्न होने के कारण	8
2.	कुछ संक्रामक रोग	22
3.	पेट के रोग	52
4.	कान, नाक तथा गले के रोग	70
5.	श्वसन संस्थान अर्थात् सीने के रोग	81
6.	दांतों के रोग	101
7.	आंखों के रोग	105
8.	स्त्रियों के सामान्य रोग	112
9.	शिशु पालन	126
10.	रति रोग	132
11.	विभिन्न रोग	136
	प्राथमिक सहायता	144

तौल और माप के व्यवहारिक पैमाने

1 सेर=16 छटांक=32 आउन्स=1000 ग्राम या 1 लीटर

1 छटांक=5 तोला=2 आउन्स=60 ग्राम या मिलीलीटर

1 तोला=12 माशे=12 ग्राम=3 ड्राम

1 माशा=8 रत्ती=1 ग्राम

1 रत्ती=120 मिलीग्राम=2 ग्रेन

1 पिन्ट=20 आउन्स=600 ग्राम या मिलीलीटर

1 पौंड=16 आउन्स=500 ग्राम या मिलीलीटर

1 आउन्स=8 ड्राम=30 ग्राम या मिलीलीटर

1 ड्राम=60 ग्रेन या 60 मिनिम=4 ग्राम या मिलीलीटर

1 ग्राम=1 मिलीलीटर=1 सी० सी०=15 ग्रेन या मिनिम

1 ग्रेन=60 मिलीग्राम=1 मिनिम (बूंद)

दवाओं की मात्रा

इस पुस्तक में बहुत से रोगों में दवा की खुराक चाय के चम्मच (Tea spoon) के हिसाब से बताई गई है। चाय के चम्मच में 5 मिलीलीटर, जो कि 75 बूंदों के बराबर होता है, दवा (या पानी) आती है। किसी शीशी से 75 बूंद पानी की एक छोटी चम्मच में टपकाइये। अगर यह मुंह तक भर जाये तो इस चाय के चम्मच को औषधि प्रयोग के लिए बना लीजिए। जहां भी चाय के चम्मच भर सूखी या द्रव दवा देनी हो इस चम्मच से नाप लीजिए। अनुमान से दवा देना कभी-कभी हानिकारक हो सकता है अतः हमेशा नापतोल कर ही दवा देनी चाहिए।

नोट—इस पुस्तक में अनेक स्थानों पर मिलीग्राम के लिए संक्षिप्त शब्द 'मिग्रा' और मिलीलीटर के लिए 'मिली' प्रयोग किया गया है।

औषधियों के सम्बन्ध में चेतावनी

इस पुस्तक में रोगों का घरेलू उपचार करने के लिए देशी व अंग्रेज़ी दवाओं के जो नुस्खे दिए गए हैं वे वर्षों से चिकित्सा जगत में काम आ रहे हैं और आमतौर पर इन्हें बहुत सुरक्षित समझा जाता है। परन्तु किसी-किसी रोगी में कुछ खास दवाओं से एलर्जी (Allergy) पैदा हो जाती है जैसे कि त्वचा पर लाल रंग के दाने निकल आना, खुजली पैदा हो जाना या पेट में जलन अथवा दस्त लग जाना आदि। यदि ऐसे लक्षण दिखाई पड़ें तो तुरन्त उस दवा का सेवन बन्द कर देना चाहिए। कुछ रोगियों में ये एलर्जिक लक्षण ऐस्प्रिन जैसी हानिरहित पीड़ाहर ज्वरनाशक दवा से भी उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ दवाएं ऐसी भी हैं जो दस-पांच दिन प्रयोग करने से कोई हानि नहीं पहुंचातीं परन्तु लम्बे अर्से तक प्रयोग करने से शरीर को निश्चित रूप से हानिकारक होती हैं।

इस पुस्तक में एण्टीबायोटिक औषधियों जैसे कि पेनिसिलिन व टेट्रासाइक्लीन आदि का भी उल्लेख किया गया है। पाठकों को इन दवाओं को साधारण रोगों जैसे कि सर्दी-जुकाम और बुखार आदि में प्रयोग नहीं करना चाहिए। ये औषधियां खतरे से खाली नहीं हैं। उदाहरण के लिए कुछ रोगियों में पेनिसिलिन का इंजेक्शन लगाते ही रोगी बेहोश हो जाता है या मर जाता है।

याद रखिए कि यदि रोग गम्भीर हो या घरेलू उपचार के बावजूद रोगी की हालत में सुधार न हो अथवा यह निश्चित न हो कि रोग कौन-सा है तो तुरन्त ही डाक्टर को दिखाना चाहिए।

१. रोग उत्पन्न होने के कारण

जब शरीर अथवा इसका कोई अंग ठीक तरह से काम करना बन्द कर देता है तो इसके कारण से मनुष्य को जो असुविधा अथवा कष्ट होता है उसे ही रोग या डिजीज (Disease) कहते हैं।

मनुष्य को सैंकड़ों तरह के रोग होते हैं जिनका वर्गीकरण करना बहुत कठिन कार्य है। फिर भी मोटे रूप में इन रोगों को नीचे लिखे वर्गों में रखा जा सकता है :

(1) **संक्रामक रोग** (Infectious Diseases)—इन्हें छूत के रोग कहते हैं। ये रोग विभिन्न जातियों के जीवाणुओं और वायरसों द्वारा उत्पन्न होते हैं। मनुष्यों को होने वाले सबसे भयंकर और कष्टदायक रोग यही हैं। इनमें मृत्यु संख्या भी बहुत अधिक होती है। यक्ष्मा (तपेदिक), निमोनिया, चेचक, हैजा, मलेरिया, सिफलिस और सूजाक आदि इसी वर्ग के रोग हैं।

(2) **हीनता जनित रोग** (Deficiency Diseases)—हमारे भोजन में अगर लम्बे समय तक प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन अथवा खनिज लवणों की कमी रहे तो इस तरह के रोग हो जाते हैं। एनीमिया (अरक्तता), बेरी-बेरी, बच्चों में सूखा रोग, रिकेट्स, स्कर्वी आदि इसी प्रकार के रोग हैं।

(3) **व्यपजनन सम्बन्धी रोग** (Degenerative Diseases)—ये वे रोग हैं जो वृद्धावस्था के कारण शरीर के ऊतकों, कोशिकाओं तथा अंगों में होने वाली घिसाई और टूट-फूट के कारण उत्पन्न होते हैं जैसे हृदय रोग, हाई ब्लड प्रैशर, रूमैटिज्म (वात रोग) इत्यादि।

(4) **एलर्जी** (Allergies)—एलर्जी के कारण उत्पन्न हुए रोग ज्यादा गम्भीर तो नहीं होते परन्तु मनुष्य इनके कारण काफी परेशान रहता है। कुछ लोग किसी विशेष चीज के प्रति संवेदनशील होते हैं और जब वे वस्तुएं उनके

शरीर के सम्पर्क में आती हैं तो वे रोगी हो जाते हैं। कुछ लोग अगर धूल भरे वातावरण में कुछ ही दिनों रहें तो उन्हें दमा हो जाता है, कुछ लोग यदि कोई विशेष औषधि खा लें तो समस्त शरीर पर फुंसियां निकल आती हैं और खुजली होने लगती है। कुछ लोगों को पेनिसिलिन से इतनी एलर्जी होती है कि इसका इन्जेक्शन लगाते ही वे बेहोश हो जाते हैं, यहां तक कि मृत्यु हो सकती है।

(5) **कैन्सर** (Cancer)—जब हम वयस्क हो जाते हैं तो हमारे शरीर की अधिकांश कोशिकाओं में विभाजन होना समाप्त हो जाता है। केवल अस्थिमज्जा, कार्निया, त्वचा और जनन ग्रंथियों की कोशिकाएं विभाजित होती रहती हैं ताकि टूट-फूट कर नष्ट हो गई कोशिकाओं की क्षति पूर्ति की जा सके। कभी-कभी किसी कारण से, जो वैज्ञानिकों को अभी तक मालूम नहीं हो सका है, शरीर के किसी अंग की कोशिकाएं अनियंत्रित रूप से बढ़ना शुरू कर देती हैं जिससे गांठें या रसौलियां बन जाती हैं। इन गांठों से प्रारम्भ में कोई पीड़ा नहीं होती अतः रोगी का ध्यान इनकी ओर नहीं जाता परन्तु शीघ्र ही ये गांठें इतनी तेजी से बढ़ने लगती हैं कि रोगी की मृत्यु हो जाती है। धूम्रपान करने वाले लोगों के गले में प्रायः कैन्सर हो जाता है। संसार में प्रतिवर्ष लगभग 20 लाख लोग कैन्सर से मर जाते हैं।

इनके अतिरिक्त रोगों के और भी वर्ग बनाए जा सकते हैं जैसे कि मानसिक रोग (मिरगी, हिस्टीरिया, अवसाद आदि) तथा अन्तः स्रावी ग्रंथियों के अधिक या कम काम करने से उत्पन्न रोग (मधुमेह, घेघा, बंध्यत्व, नपुंसकता आदि)।

उपरोक्त विवरण से ज्ञात हो गया होगा कि मनुष्य को सताने वाले अधिकांश भयंकर और घातक रोग जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होते हैं। अतः हम सबसे पहले जीवाणुओं पर विचार करेंगे।

जीवाणु और उनसे उत्पन्न रोग

इस पृथ्वी पर मनुष्य के जन्म से भी लगभग 200 करोड़ वर्ष पहले एक-कोशिकीय सृष्टि का निर्माण हो चुका था। जैसा कि हम जानते हैं मनुष्य का शरीर अरबों-खरबों कोशिकाओं (Cells) से मिलकर बना है। परन्तु जीवाणु का शरीर अकेली एक कोशिका का बना होता है इसीलिए इन्हें एककोशिकीय जीव कहा जाता है। ये इतने छोटे होते हैं कि आंख से दिखाई नहीं पड़ते। इन्हें केवल सूक्ष्म-

दर्शी द्वारा ही देखा जा सकता है। परन्तु इतना छोटा होते हुए भी ये जीवित प्राणी होते हैं। ये अपनी वंश वृद्धि भी करते हैं, इन्हें भोजन की भी आवश्यकता होती है तथा अधिक ताप, अधिक शीत अथवा जहरीली रसायनों से ये मर जाते हैं।

इस भूमडल पर जितने भी जीव-जन्तु तथा प्राणी हैं इन सबकी संख्या मिला कर जीवाणुओं की संख्या के मुकाबले में नगण्य ही समझना चाहिए। भूमि का कोई भी भाग, वायुमंडल में धूल का कोई भी कण, पानी की कोई बूंद, मक्खी का कोई भी पैर और मनुष्य का कोई भी बाल ऐसा नहीं है जिस पर हजारों की संख्या में जीवाणु न रहते हों।

हम जीवाणुओं को खाते भी हैं

जिस समय गांव में रात्रि में दूधिया अपनी बाल्टी में दूध दुहता है तो बाल्टी के प्रत्येक चाय के चम्मच भर दूध में जीवाणुओं की संख्या 10,000 से 20,000 तक होती है। जब वह एक घंटे बाद दूध लेकर रेलवे स्टेशन तक पहुंचता है तो इसमें जीवाणुओं की संख्या दस गुनी हो जाती है। कई घण्टे बाद जब प्रातःकाल हम यह दूध खरीदते हैं तो प्रत्येक चाय के चम्मच भर इस दूध में जीवाणुओं की संख्या 5,00,000 तक हो जाती है। यह दूध दो-तीन घंटे और रखा रहे तो इनमें जीवाणुओं की संख्या दस करोड़ तक हो जाती है। मक्खन में जीवाणुओं की संख्या इससे दस गुनी अधिक होती है। दही में चौथाई और पनीर में आधा वजन जीवाणुओं का ही होता है।

जीवाणु प्रत्येक स्थान पर

जब भी और जिस स्थान पर मनुष्य अथवा पशु अधिक संख्या में एक ही स्थान पर रहने लगते हैं तो जीवाणुओं की संख्या असाधारण रूप से बढ़ जाती है। साधारण खेत या मैदान की एक चाय का चम्मच भर मिट्टी में केवल 10 लाख जीवाणु होते हैं परन्तु कूड़े की खाद के ढेर में प्रत्येक चाय के चम्मच में इनकी संख्या 100 करोड़ तक होती है। जहां नगर के गंदे पानी और मल के नाले नदियों में गिरते हैं उससे तनिक ही आगे नदी के प्रत्येक चाय के चम्मच पानी में एक करोड़ जीवाणु हो जाते हैं। प्रातः काल की वायु में धूल बहुत कम होती है अतः

इसमें जीवाणु भी कम होते हैं क्योंकि जीवाणु हवा में तैरते हुए नहीं रह सकते बल्कि धूल के कणों पर यात्रियों की तरह ये सवार रहते हैं। धूल के प्रत्येक कण को एक गुब्बारा समझना चाहिए जिसके ऊपर बैठकर कई सौ जीवाणु हवा में उड़ते रहते हैं। जैसे-जैसे दिन चढ़ता जाता है जीवाणुओं की संख्या बढ़ती जाती है और संध्या होते-होते रेलवे-स्टेशनों, रेस्तरांओं, होटलों और सिनेमागृहों की वायु में इनकी संख्या अधिक-से-अधिक हो जाती है।

मनुष्य और जीवाणु

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जो प्राणी इतनी अधिक संख्या में हैं कि हमारी प्रत्येक सांस के साथ हजारों की संख्या में हमारे शरीर के अन्दर पहुंच जाते हैं वे हमें पूर्णत: हानिकारक नहीं होंगे। वास्तविकता यह है कि शेर, चीते, घोड़े, गधे आदि प्राणियों की तरह जीवाणु भी जीवित प्राणी हैं, वे हमें न तो हानि पहुंचाना चाहते हैं और न लाभ। वे केवल जीवित रहना चाहते हैं जिस प्रकार हम तथा अन्य प्राणी।

जीवाणुओं की लगभग 10,000 जातियां हैं। इनमें से 90 प्रतिशत से तो हमें कोई सरोकार ही नहीं हैं। ये वे जीवाणु हैं जो मृत जानवरों तथा पेड़-पौधों को गला-सड़ा कर मिट्टी में मिला देते हैं और इस प्रकार भूमि को उपजाऊ तथा वातावरण को स्वच्छ रखने में सहायता करते हैं। थोड़े से जीवाणु हमारे लिए लाभदायक हैं और हमारी सेवा करते हैं। ये जीवाणु पनीर, दही, सिरका, बियर और मदिरा तैयार करते हैं। जिस प्रकार हम पालतू जानवरों के साथ रहते हैं उसी तरह हम इन ज़ीवाणुओं के साथ सह-अस्तित्व के सिद्धांत के अनुसार रहते हैं।

तीसरे प्रकार के जीवाणु वे हैं जो हमें रोगग्रस्त करके हानि पहुंचाते हैं। इन्हें रोगाणु (Pathogens) कहते हैं।

जीवाणु हमारे पालतू जानवर

हमारे शरीर के जितने भी अंग बाह्य जगत के सम्पर्क में आते हैं उन सब में जीवाणु निवास करते हैं। हमारे शरीर की त्वचा पर, हमारे मुंह, नाक, श्वास मार्ग और आंतों में जीवाणु रहते हैं। हमारे जन्म के कुछ दिनों बाद ही ये इन अंगों में उपनिवेश बनाकर रहने लगते हैं। चूंकि जीवाणुओं को वनस्पति वर्ग में रखा

गया है अतः किन्हीं विशेष अंगों में जीवाणुओं द्वारा निर्मित उपनिवेश को उस अंग का 'उद्यान' या 'बाग' (Flora) कहा जाता है। उदाहरण के लिए हमारे मुंह के अन्दर के जीवाणुओं के उद्यान में लगभग पचास विभिन्न तरह के जीवाणु रहते हैं। हमारी बड़ी आंतों के जीवाणुओं के बाग में कम से कम 75 प्रकार के जीवाणु रहते हैं जो आपस में एक दूसरे को तथा मनुष्य को सहयोग देते रहते हैं। मनुष्य इनको भोजन देता है और ये भोजन के रेशेदार अंश (Cellulose) को गला देते हैं जिसे मनुष्यको पचाना कठिन होता है। इसमें से कुछ जीवाणु हमारे लिए विटामिन 'B' भी तैयार करते हैं। मनुष्य जो विष्टा करता है उसमें करोड़ों-अरबों की संख्या में जीवाणु मनुष्य के शरीर से बाहर निकलते हैं।

मानव शरीर के विभिन्न अंगों में बने हुए जीवाणुओं के ये उपनिवेश खतरनाक अथवा हानिकारक नहीं हैं बल्कि वे मनुष्य के शरीर में लाखों वर्षों से बने हुए हैं। ये मनुष्य के सबसे प्राचीन पालतू जानवर हैं।

हर समय बिना किसी व्यवधान के अनेकों प्रकार के जीवाणु हमारे शरीर में प्रविष्ट होते रहते हैं। कभी-कभी एक चाय के चम्मच दूध में 3000 तक क्षय (T.B.) उत्पन्न करने वाले जीवाणु पाये गए हैं। इसी प्रकार अन्य रोग उत्पन्न वाले जीवाणु हमारे चारों तरफ मौजूद रहते हैं। बच्चों के भयंकर रोग डिफ्थीरिया और मैनिनजाइटिस (गर्दन तोड़ बुखार) उत्पन्न करने वाले जीवाणु बहुत से ऐसे व्यक्तियों की नाक और गले में पाये जाते हैं जो सब प्रकार से स्वस्थ होते हैं। इन लोगों की छुई हुई या इनकी झूठी वस्तु से दूसरे व्यक्तियों को रोग लगते रहते हैं। अनेक प्रकार के कष्टदायक फोड़े और पीप उत्पन्न करने वाले जीवाणु हममें से अधिकांश व्यक्तियों की त्वचा पर पलते रहते हैं। मियादी बुखार (टाईफायड) के जीवाणु भी बहुत से स्वस्थ रोगियों के शरीर पर पाए जाते हैं। ये जीवाणु इनके मल में निकलते रहते हैं और इनके अशुद्ध हाथों या मक्खियों द्वारा दूसरे लोगों को रोगग्रस्त करते रहते हैं।

रोग क्षमता

इतने भयंकर प्रकार के जीवाणु हमारे शरीर में रहते हैं तथा बाहर से भी हर समय प्रविष्ट होते रहते हैं इतना होते हुए भी हम सब बीमार होकर मर क्यों नहीं

जाते ? हमारे शरीर में कुछ ऐसी प्राकृतिक शक्तियां हैं जो हमारे अदृश्य शत्रुओं का मुकाबला करती रहती हैं और हमें जीवित रखती हैं।

स्मरण रखना चाहिए कि हमारे नाक-मुंह व बड़ी आंतों में जो जीवाणु होते हैं यह इन अंगों की श्लेष्मकला पर पलते रहते हैं। इसी प्रकार हमारी त्वचा पर भी जीवाणु पलते रहते हैं। ये त्वचा की ऊपर की मृत कोशिकाओं को खाकर जीवित रहते हैं और उनके इस कार्य से हमारी त्वचा भी स्वच्छ रहती है। परन्तु ये समस्त जीवाणु हमारे वास्तविक अन्दरूनी अंगों में अर्थात् ऊतकों (Tissues) और रक्त प्रवाह के अन्दर प्रविष्ट नहीं हो पाते। वृहद आंत्र निवासी जीवाणु आंतों में तो रहते हैं परन्तु आंतों की दीवारों में छेद करके आंत की दीवार में नहीं घुसते। इसी प्रकार त्वचा के निवासी जीवाणु हमारी चमड़े जैसी मजबूत त्वचा को छेदकर अन्दर नहीं घुस पाते परन्तु कांटा लग जाने या त्वचा में जख्म हो जाने पर इन्हें त्वचा के अन्दर हमारे रक्त-संस्थान में पहुंचने का अवसर मिल सकता है और ये जीवाणु पीप से लेकर फोड़े तक उत्पन्न कर सकते हैं। धूल व गन्दगी में रहने वाले टेटनस उत्पादक जीवाणु भी त्वचा में जख्म हो जाने पर रक्त प्रवाह में प्रविष्ट होकर मनुष्य के जीवन को संकट में डाल सकते हैं।

जीवाणु हमारे रक्त संस्थान में आसानी से प्रवेश नहीं कर पाते। यदि कोई जीवाणु ऐसा प्रयत्न करता है तो उसे तुरन्त मार दिया जाता है। हमारा रक्त संस्थान समस्त जीवाणुओं के लिए 'विष' है। लिम्फ ग्रंथियां जीवाणुओं का वध करने के कसाई खाने हैं और प्रत्येक खतरे के स्थान पर ये लगी हुई हैं। गले के अन्दर टान्सिल जीवाणुओं के फांसी घर हैं। रक्त में उपस्थित श्वेत कोशिकाएं रोजाना लाखों जीवाणुओं को खाती रहती हैं।

इतना सब होते हुए भी थोड़ी-सी संख्या ऐसे भयंकर जीवाणुओं की है जिन्हें हमारे ऊतकों में प्रविष्ट होने का अवसर मिल ही जाता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि हमारे शरीर का उपरोक्त रक्षा प्रबन्ध किसी कारण से कमजोर हो जाता है जिससे ये जीवाणु ऊतकों के अन्दर प्रविष्ट हो जाते हैं। जीवाणु ऊतकों में प्रविष्ट होकर अपने विष द्वारा ऊतकों को जो क्षति पहुंचाने लगते हैं इस क्रिया को संक्रमण (Infection) कहते हैं। इस संक्रमण के फलस्वरूप जो रोग उत्पन्न होते हैं उन्हें संक्रामक रोग (Infectious Diseases) या छूत के रोग कहते हैं। इनको 'संक्रामक' इसलिए कहा जाता है कि ये एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को लग जाते

हैं। संक्रामक रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं को रोगजनक जीवाण (Pathogens) कहते हैं।

संक्रामक रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु बहुत प्रकार के हैं। इनके सम्बन्ध में हम आगे बता रहे हैं। इनमें सबसे अधिक विषैले हैं वायरस—जो चेचक, खसरा, पोलियो आदि उत्पन्न कर देते हैं। हमारे शरीर की सामान्य रक्षा शक्ति कभी-कभी इन रोगोत्पादक जीवाणुओं का मुकाबला करने में असमर्थ रह जाती है अतः हम रोगी हो जाते हैं। इसका एक अच्छा उदाहरण निमोनिया है। इस रोग को उत्पन्न करने वाले जीवाणु हमारे आस-पास चारों तरफ रहते हैं। ये जीवाणु अधिकांश व्यक्तियों के गले के अन्दर श्लेष्म कला पर हर समय मौजूद रहते हैं परन्तु हानि नहीं पहुंचाते। परन्तु यदि शरीर की प्रतिरोध करने की शक्ति घट जाती है—जैसे कि उस दशा मे जबकि मनुष्य बहुत देर तक ठण्ड खाता रहे अथवा किसी रोग के कारण उसका शरीर दुर्बल हो जाए—तो न्यूमोनिया हो सकता है। इस दशा में शरीर के अन्दर रहने वाले जीवाणु ही जो स्वस्थ अवस्था में कोई हानि नहीं पहुंचाते शरीर में कमजोरी आते ही हमला करके न्यूमोनिया रोग में ग्रस्त कर देते हैं। 'रोग' हमारे शरीर के रक्षा प्रबन्ध और जीवाणुओं के बीच होने वाले युद्ध का प्रतीक है। इस युद्ध में जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न विष को निष्क्रिय करने तथा जीवाणुओं को नष्ट करने के लिए रक्त में नये प्रकार के प्रतिविष या एन्टी-टाक्सिन (एण्टीबाडीज) उत्पन्न होने लगते हैं। समस्त शरीर संक्रमण के विरुद्ध युद्ध में जुट जाता है।

ज्वर (Fever)

इस युद्ध का एक अंग ज्वर या बुखार है जो लगभग समस्त संक्रामक रोगों में उत्पन्न होता है। यह जीवाणुओं के विष के कारण उत्पन्न नहीं होता बल्कि मस्तिष्क के अन्दर स्थित ताप नियन्त्रक केन्द्र की स्वचलित प्रतिक्रिया के कारण होता है। चूंकि समस्त जीवाणुओं में अपनी वंश वृद्धि करने की क्षमता 99 अंश फा० तापमान तक ही अच्छी रहती है अतः ज्वर में शरीर का ताप इस तापमान से अधिक बढ़ जाने पर जीवाणु निष्क्रिय होकर मरने लगते हैं और शरीर इनके मुकाबले में मजबूत होता जाता है। इससे स्पष्ट है कि शारीरिक तापमान की वृद्धि या ज्वर रोग की निशानी नहीं है बल्कि स्वास्थ्य का प्रतीक है। यह इस

बात का संकेत है कि ऊतकों में प्रविष्ट हुए हानिकारक पदार्थों को बाहर निकालने में समस्त शरीर अधिक तेजी से काम कर रहा है। यह समुचित तापमान की प्रतिक्रिया केवल उसी शरीर में होती है जिसकी रक्षा शक्ति स्वस्थ होती है।

टाक्सिन और एन्टीटाक्सिन

जीवाणुओं द्वारा फैलने वाले रोगों के सन्दर्भ में हमें कुछ बातें जीवाणु विष तथा उसके प्रत्युत्तर में हमारे शरीर द्वारा बनाए जाने वाले प्रतिविष (एन्टी-टाक्सिन या एन्टीबाडीज) के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए क्योंकि इस ज्ञान का उपयोग करके ही चिकित्सा विज्ञान ने मानव समाज को प्लेग और हैजे जैसी महामारियों से मुक्त कर दिया है और अब भारत से चेचक का भी पूर्ण उन्मूलन कर दिया गया है।

जीवाणुओं को हमारे रक्त प्रवाह में प्रविष्ट हो जाने का अवसर मिल जाता है तो ये अनेकों प्रकार से शरीर को क्षतिग्रस्त करने लगते हैं। बच्चों के भयकर रोग डिफ्थीरिया के जीवाणु गतिशील नहीं हैं। बच्चे के मुंह में टान्सिलों के ऊपर ये मेहमान के रूप में प्राय: सदैव ही उपस्थित रहते हैं परन्तु बच्चे के कमजोर हो जाने पर हमला करके टान्सिलों के ऊपर सफेद रंग की झिल्ली बना देते हैं और इसके साथ ही एक बड़ा शक्तिशाली विष—डिफ्थीरिया टाक्सिन—बनाते रहते हैं जो रक्त तथा लिम्फ में मिलता जाता है। यह टाक्सिन हृदय को, तन्त्रिका-तन्त्र को तथा वृक्कों को क्षतिग्रस्त कर देता है। अगर शरीर में कहीं पर ऐसे स्थान पर जख्म हो जाए जहां पशुओं का गोबर आदि धूल में मिला हुआ हो तो टेटनस के जीवाणु—जो प्राय: चौपायों की आंतों में रहते हैं—इस धूल के साथ ज़ख्म में प्रविष्ट होकर एक शक्तिशाली विष अर्थात् टाक्सिन बनाकर रक्त में मिलाने लगते हैं। यह टाक्सिन इतना शक्तिशाली है कि केवल एक ग्राम इस टाक्सिन से 4000 मनुष्यों की मृत्यु हो सकती है। यदि तुरन्त उपचार न किया जाए तो टेटनस का टाक्सिन मेरुरज्जु तथा मस्तिष्क में पहुंचकर शरीर को चलाने वाली मोटर तन्त्रिकाओं को ऐंठा देता है जिससे रोगी का समस्त शरीर धनुष की तरह टेढ़ा हो जाता है।

परन्तु हमारा शरीर इस टाक्सिन के आगे सिर नहीं झुका देता, वह इसका डटकर मुकाबला करता है। इस टाक्सिन के प्रत्युत्तर में हमारे रक्त में एक

विशिष्ट प्रकार की एन्टीबाडीज या प्रति-विष उत्पन्न होने लगती हैं जिन्हें एन्टीटाक्सिन कहा जाता है। ये जीवाणु द्वारा उत्पन्न विष के साथ मिलकर उसके प्रभाव को नष्ट कर देती हैं। प्रत्येक एन्टीटाक्सिन उसी जीवाणु के विष के लिए विशेष रूप से घातक होती हैं जिसके प्रत्युत्तर में यह बनाई गई है। उदाहरण के लिए टेटनस एन्टीटाक्सिन टेटनस के टाक्सिन को ही नष्ट करती है परन्तु डिफ्थीरिया के टाक्सिन को नहीं। हमारा शरीर फालतू मात्रा में एन्टीटाक्सिन उत्पन्न करता है। यदि किसी व्यक्ति को चेचक हो जाती है तो उसका शरीर इतनी अधिक मात्रा में एन्टीटाक्सिन बना लेता है कि रोग की मियाद पूरी होने के बाद भी यह इतनी फलातू मात्रा में बच रहती है कि भविष्य में चेचक के जीवाणु जब भी उसके शरीर में घुसने का प्रयत्न करते हैं तो यह उसको तुरन्त नष्ट कर देती है। यह एन्टीटाक्सिन जीवन भर उस व्यक्ति के रक्त में रहती है अत: जीवन में दोबारा उस व्यक्ति पर चेचक का आक्रमण नहीं होता। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि इस फालतू मात्रा में उत्पन्न एन्टीटाक्सिन के कारण उस व्यक्ति में चेचक का मुकाबला करने की शक्ति पैदा हो गई है। इस शक्ति को रोग क्षमता (Immunity) कहते हैं। इसी प्रकार मनुष्य में खसरा आदि रोगों के प्रति रोग क्षमता उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार मनुष्य जो रोग क्षमता प्राप्त करता है उसे उपार्जित रोग क्षमता (Acquired immunity) कहते हैं।

यहां यह भी स्मरण रखना चाहिए कि कुछ गिनती के रोग ही ऐसे हैं जिनके उत्पादक जीवाणु मानव शरीर में प्रविष्ट होने पर शरीर में एन्टीबाडीज उत्पन्न होने लगते हैं। बहुत से जीवाणु ऐसे हैं जिनका बार-बार आक्रमण हो सकता है और हर बार मनुष्य रोगग्रस्त हो जाता है क्योंकि उसका शरीर इनके विरुद्ध एन्टीबाडीज उत्पन्न नहीं करता। ऐसे जीवाणुओं में जिनके विरुद्ध एन्टीबाडीज का निर्माण नहीं होता, उल्लेखनीय हैं गोनोकोकाई जो सूजाक उत्पन्न करते हैं, ट्रिपनोमा पैलीडम जो उपदंश (आतशक) उत्पन्न करते हैं और कुष्ट उत्पन्न करने वाले माइकोबैक्टीरियम लेप्रे नामक जीवाणु। पेचिश आदि के जीवाणुओं के विरुद्ध भी एन्टीबाडीज का निर्माण नहीं होता और यह हमारे दुर्भाग्य की ही बात है कि समस्त जीवाणुओं में एन्टीबाडीज निर्माण करने का गुण नहीं है अन्यथा आज मानव जाति समस्त संक्रामक रोगों से मुक्त हो गई होती।

बच्चों में रोग क्षमता कैसे उत्पन्न की जाए

हम पीछे बता चुके हैं कि वयस्क व्यक्ति वर्षों तक संक्रामक रोग उत्पन्न करने वाले पचासों तरह के जीवाणुओं का आक्रमण झेलते-झेलते उनका इतना अभ्यस्त हो जाता है तथा उसका शरीर इतने प्रकार के एन्टीटाक्सिन उत्पन्न कर चुका होता है कि उसे ये रोग बहुत कम होते हैं या होते ही नहीं। परन्तु बच्चे इस दुनिया में नए-नए आए होते हैं, उनके शरीर में एन्टीबाडीज भी कम मात्रा में होती हैं अतः संक्रामक रोगों के जीवाणु आसानी से उन्हें अपना शिकार बना लेते हैं। अतः यह कोशिश की जानी चाहिए कि इनके शरीर में अधिक-से-अधिक रोगों के विरुद्ध रोग क्षमता उत्पन्न की जाए। बच्चों में हम कृत्रिम विधि से रोग क्षमता उत्पन्न करते हैं। रोग क्षमता उत्पन्न करने की प्रक्रिया को क्षमीकरण (Immunization) कहते हैं।

चिकित्सा वैज्ञानिकों ने खोज की है कि कुछ ऐसे रोग हैं जिनके जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न विष (टाक्सिन) को अथवा स्वयं जीवाणुओं को मृत अथवा कमजोर बनाकर मनुष्य या किसी अन्य प्राणी के शरीर में प्रविष्ट कर दिया जाए तो ये उस प्राणी को हानि नहीं पहुंचाते पर इनके कारण उसके शरीर में एन्टीबाडीज उत्पन्न होने लगती हैं। ये एन्टीबाडीज शरीर में बनी रहती हैं और जब उस रोग के नए जीवाणु आक्रमण करते हैं तो ये उनका मुकाबला करती हैं। कभी-कभी ये एन्टीबाडीज प्राणी के शरीर में आक्रमण रोकने लायक मात्रा में नहीं होतीं। उस दशा में वह प्राणी रोगग्रस्त तो हो जाता है पर रोग का आक्रमण बहुत हल्का होता है।

इस खोज का व्यावहारिक लाभ हम इस प्रकार उठाते हैं कि मनुष्य के शरीर में एन्टीटाक्सिन उत्पन्न करने का गुण रखने वाले कुछ रोगजनक जीवाणुओं को लेबोरेट्री में पाल कर उनका विष (टाक्सिन) एकत्रित कर लेते हैं अथवा जीवाणुओं को दुर्बल या मृत करके उनको किसी उचित द्रव में घोल लेते हैं। इस घोल को वैक्सीन (Vaccine) कहते हैं। रोगों की रोकथाम के लिए हम बच्चों के इन्हीं वैक्सीनों के टीके लगाते हैं। कई बार हम जीवित जीवाणुओं का ही घोल अर्थात् वैक्सीन बनाकर इसके टीके लगाते हैं। इस प्रकार टीके लगाकर जो रोग क्षमता मनुष्यों को हम प्रदान करते हैं उसे कृत्रिम विधि से प्रदत्त सक्रिय रोग क्षमता कहते हैं।

चूंकि इस प्रकार शरीर में जीवाणुओं को प्रविष्ट करने पर शरीर में रोग-क्षमता उत्पन्न होने में काफी समय—कई बार तो कई-कई सप्ताह—लग जाते हैं इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि रोग निरोधी टीके स्वस्थ अवस्था में ही लगवा लिए जाएं ताकि रोग उत्पन्न ही न हो।

एक दूसरे प्रकार के टीके भी होते हैं जिन्हें सीरम (Serum) या एन्टीटाक्सिन कहते हैं। ये टीके या इन्जेक्शन उस समय लगाये जाते हैं जब मनुष्य अचानक रोगग्रस्त हो जाए। ये सीरम मुख्य रूप से घोड़े के रक्त से प्राप्त किए जाते हैं। ये सीरम केवल पांच-छ: रोगों में ही कारगर सिद्ध हुए हैं। इनमें उल्लेखनीय हैं—डिफ्थीरिया, गैस गैंग्रीन, टेटनस, कुत्ते के काटने से उत्पन्न हाइड्रोफोबिया या रैबीज रोग और सर्प दंश। इन्हें बनाने के लिए घोड़े के शरीर में इन रोगों के उत्पादक जीवाणु इन्जेक्शन द्वारा थोड़ी-थोड़ी मात्रा में प्रविष्ट किए जाते हैं जिससे घोड़े के रक्त में एन्टीबाडीज बनने लगती हैं। जब इनका उत्पादन एक निश्चित सीमा तक हो जाता है तो घोड़े की एक शिरा काटकर उचित मात्रा में रक्त निकालकर रक्त का द्रव भाग अलग कर लेते हैं। इस द्रव भाग में ही एन्टीबाडीज रहती हैं। इस द्रव अंश को ही सीरम कहते हैं। जब कोई व्यक्ति अचानक उक्त में से किसी रोग में ग्रसित हो जाता है तो उस समय इंजेक्शन द्वारा उसके शरीर में सीरम पहुंचाने से यह सीरम उस रोग के जीवाणु के विष को निष्क्रिय कर देता है।

यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि यह सीरम उपचार यद्यपि प्रभावशाली है परन्तु यह उतना निर्भर योग्य नहीं है जितना स्वस्थ रोगी के शरीर में वैक्सीन द्वारा जीवाणु पहुंचाकर स्वयं उसके शरीर में एन्टीबाडीज उत्पन्न करने वाला तरीका है।

जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, एन्टीबाडीज उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं से निर्मित वैक्सीन को शरीर में प्राय: इंजेक्शन द्वारा प्रविष्ट किया जाता है। इसको वैक्सीन देना या 'टीके लगाना' कहा जाता है परन्तु चेचक के जीवाणुओं (वायरस) को त्वचा में खरोंच लगाकर प्रविष्ट करते हैं और पोलियो के वायरसों को बच्चे की जीभ पर रखकर चटा दिया जाता है। इन उपायों को भी 'टीका लगाना' कहा जाता है।

किसी टीके का प्रभाव लम्बे समय तक रहता है। उदाहरण के लिए क्षय रोग का टीका (B.C.G.) बच्चे की एक मास की आयु तक लगवा लेने से क्षय के प्रति

रोग क्षमता लगभग 12-13 वर्ष की आयु तक बनी रहती है परन्तु कुछ रोगों के प्रति हमारे शरीर में रोग क्षमता जल्दी ही समाप्त होने लगती है क्योंकि एन्टीबाडीज का उत्पादन होना बन्द हो जाता है या ये कम मात्रा में रह जाती हैं। ऐसी दशा में इन एन्टीबाडीज को बढ़ाने के लिए एक बार या कई बार पुनः टीके लगवाना जरूरी हो जाता है। इससे शरीर में पुनः एन्टीबाडीज बनने लगती हैं।

टीके लगवाने का कार्यक्रम

जैसा कि पीछे बताया जा चुका है कि बच्चों पर कई प्रकार के जीवाणु आक्रमण करके उन्हें रोगग्रस्त कर देते हैं। डिफ्थीरिया रोग का आक्रमण बच्चे के गले पर होता है और दम घुटने से बच्चा मर जाता है। कुकर खांसी (Pertusis या Whooping cough) बच्चे को असाधारण रूप से दुर्बल कर देती है, कई बच्चे इसमें मर जाते हैं। टेटनस रोग में बच्चे (और बड़ी आयु के व्यक्तियों की भी) की गर्दन ऐंठ जाती है, जबड़े कसकर बन्द हो जाते हैं तथा देखते-ही-देखते रोगी चल बसता है। चेचक, मोतीझरा और हैजे की भीषणता से हम सब अच्छी तरह परिचित हैं। पोलियो रोग का आक्रमण फालिज की तरह होता है जिसमें बच्चे का आधा अंग सूख जाता है और उसे प्रायः जीवन भर बैसाखियों के सहारे चलना पड़ता है। क्षय (तपेदिक) से हर साल हजारों व्यक्ति मर जाते हैं।

सौभाग्यवश इन सब जान लेवा रोगों के टीके आविष्कृत हो चुके हैं और वर्षों से प्रयोग में आ रहे हैं। ये टीके प्रायः सरकारी अस्पतालों में मुफ्त ही लग जाते हैं। यदि आप अपने बच्चों को भीषण रोगों से मुक्त रखना चाहते हैं तो इनके टीके बच्चों को लगवा दें। स्मरण रखिए कि रोग की रोकथाम करना इलाज की अपेक्षा अधिक उपयोगी है।

नीचे दी गई सारणी में बताया गया है कि किस-किस रोग से रक्षा करने वाले टीके किस समय लगवाने चाहिए। परंतु बच्चों की छः जान लेवा बीमारियों पोलियो, काली खांसी, डिफ्थीरिया, टेटनस, तपेदिक और खसरा से बचाव के टीके हर बच्चे के एक वर्ष की आयु होने तक अवश्य लगवा लेने चाहिए।

नाम रोग	टीका लगवाने की आयु व समय
तपेदिक	तपेदिक (यक्ष्मा) रोग से बचाव के लिए बी० सी० जी० का टीका लगाया जाता है। कंधे की त्वचा में केवल एक इंजेक्शन लगाया जाता है। यह टीका बच्चे के जन्म के पहले महीने में अथवा बाद में कभी भी लगवाया जा सकता है। यदि परिवार में किसी को क्षय रोग हो तो जन्म के पश्चात् शीघ्र ही यह टीका लगवा लेना जरूरी है। इस टीके के स्थान पर एक जख्म बन जाता है जो चार सप्ताह बाद स्वयं भर जाता है परन्तु जख्म का निशान बना रहता है।
डिफ्थीरिया, काली खांसी टेटनस	डिफ्थीरिया, पर्टयूसिस (काली खांसी) तथा टेटनस तीनों रोगों के लिए एक ही मिश्रित टीका बनाया गया है जिसे डी० पी० टी० अथवा 'ट्रिपल एन्टीजन' कहते हैं। पहला टीका 3 मास की, दूसरा टीका 4 मास की और तीसरा टीका पांच मास की आयु में लगाया जाता है। इसके पश्चात् $1\frac{1}{2}$ वर्ष, 3 वर्ष और $4\frac{1}{2}$ की आयु में एक-एक मिश्रित टीका फिर लगाते हैं।
पोलियो	इस टीके की बूंदें बच्चे के मुंह में टपकाई जाती हैं और यह स्वाद में मीठा है। पहला टीका 3 मास की, दूसरा टीका 4 मास की और तीसरा टीका 5 मास की आयु में दिया जाता है। इसके बाद $1\frac{1}{2}$, 3 और $4\frac{1}{2}$ वर्ष की आयु में एक-एक टीका (बूस्टर डोज) और देते हैं। जिस दिन डी० पी० टी० के टीके लगवाए जाएं उसी दिन पोलियो का टीका दे दिया जाता है जिससे डाक्टर के यहां बार-बार चक्कर नहीं लगाना पड़ता। पोलियो की बूंदें मुंह में टपकाने के दो घण्टे पहले और दो घण्टे बाद तक मां को अपना दूध बच्चे को नहीं पिलाना चाहिए।
खसरा	इसका एक ही टीका लगता है जो 9 से 12 मास की आयु के बीच कभी भी लगवा लेना चाहिए।

टेटनस — वयस्क व्यक्तियों तथा 12 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों के लिए टेटनस से बचाव के टीके अत्यन्त ही महत्व-पूर्ण हैं। इनमें पहले टीके एक-एक मास के अन्तर से लगाएं, फिर $1\frac{1}{2}$ वर्ष पश्चात् एक टीका और फिर प्रत्येक 10 वर्ष के पश्चात् एक-एक टीका लगना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को ये टीके लगवाने चाहिए विशेषकर गर्भवती स्त्रियों को ताकि वे स्वयं तथा उनके नवजात शिशु टेटनस में ग्रस्त न हो सकें। यदि स्त्री के पहले से टेटनस के टीके नहीं लगे हैं तो गर्भ के पांचवें से आठवें महीने तक एक-एक महीने के अन्तर से एक-एक टीका लगवा लेना चाहिए।

टाइफाइड — इसका पहला टीका दो वर्ष की आयु के बाद दिया जाता है फिर प्रति वर्ष गर्मियों का मौसम शुरू होने से पहले अर्थात् फरवरी में ही टीका लगवा लेना चाहिए। टीका लगने के स्थान पर सूजन और पीड़ा होती है। पीड़ा से मुक्ति के लिए ऐस्प्रिन टेब्लेटस सेवन कराएं।

हैजा — यदि आपके आसपास हैजा फैलने का समाचार मिले तो तुरन्त इसका टीका लगवा लेना चाहिए। इसके टीके का प्रभाव छः महीने तक रहता है। इन्जेक्शन लगने के स्थान पर पीड़ा तथा बुखार हो जाता है। ऐस्प्रिन की टेब्लेट्स सेवन कराने से बुखार तथा पीड़ा दोनों में लाभ होता है।

नोट : (1) बच्चों को जिन टीकों की आवश्यकता है वे सब समय पर लगना चाहिए और प्रत्येक टीके का पूरा कोर्स लगना जरूरी है।

(2) वर्षा ऋतु में कोई टीका या इंजेक्शन नहीं लगना चाहिए क्योंकि इन दिनों पोलियो महामारी के रूप में उपस्थित रहता है। केवल एक ही इंजेक्शन से रोगी के हाथ या पैर को लकवा मार सकता है।

(3) जिन दिनों बच्चे को ज्वर, खांसी अथवा अन्य रोग हों तो पहले इनका उपचार होना चाहिए। टीके बच्चे के स्वस्थ दशा में ही लगाने चाहिए।

२. कुछ संक्रामक रोग

हम पीछे बता चुके हैं कि चेचक, हैजा, खसरा आदि के जीवाणुओं को शरीर के ऊतकों में प्रविष्ट होने का अवसर मिल जाता है तो ये संक्रामक रोग उत्पन्न कर देते हैं। ये रोग एक रोगी व्यक्ति से अन्य स्वस्थ व्यक्तियों में फैल जाते हैं और इस कारण कभी-कभी महामारियां (Epidemics) भी फैल जाती हैं। यहां हम इन जीवाणुओं का परिचय दे रहे हैं।

संक्रामक रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु मोटे तौर पर चार प्रकार के होते हैं—(1) बैक्टीरिया (Bacteria), (2) वायरस (Virus) और रिकेटसिया, (3) प्रोटोज़ुआ और (4) फ़ंगस (Fungus) तथा यीस्ट (Yeast)।

इनमें सबसे अधिक रोग बैक्टीरिया द्वारा होते हैं। टाइफाइड (मियादी बुखार), क्षय रोग, हैजा, डिपथीरिया, टेटनस, बच्चों की काली खांसी, न्यूमोनिया, प्लेग, कोढ़, सूजाक और सिफलिस आदि रोग बैक्टीरिया से फैलते हैं।

ये बैक्टीरिया कई जातियों के होते हैं। इनकी एक जाति कॉकस (Coccus) है जिसका नाम बहुत सुनने में आता है। ये गेंद की तरह गोल होते हैं। इनमें न्यूमोकॉकस बैक्टीरिया कुछ प्रकार के न्यूमोनिया उत्पन्न करता है, गोनोकॉकस गोनोरिया या सूजाक, स्टेफिलोकॉकस फोड़े-फुंसियां, मध्य कर्ण में सूजन, कारबंकल नामक फोड़ा और स्ट्रेप्टोकॉकस अनेकों गम्भीर रोग जैसे टान्सिलों में शोथ, आंतों में सूजन, प्रसूति ज्वर, सन्धि शोथ (जोड़ों की सूजन) तथा अनेकों ऐसे रोग जिनमें पीप बहुत बनती है उत्पन्न करते हैं। इनकी दूसरी जाति बेसिलस (Bacillus) है जो डण्डे की आकृति के होते हैं। डिफ्थीरिया, यक्ष्मा, टाइफाइड तथा कुछ प्रकार की पेचिश इन्हीं के कारण उत्पन्न होती है। इनकी तीसरी जाति स्पिरिल्ला (Spirilla) कही जाती है जो पेच की तरह ऐंठनदार होते हैं। इनसे सिफलिस रोग

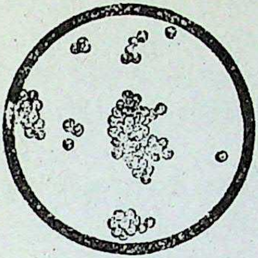

स्टैफिलोकॉक्स

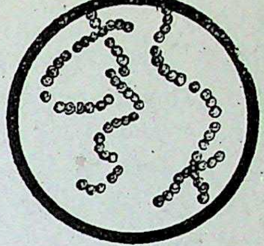

स्ट्रेप्टोकॉक्स

मनुष्य की त्वचा पर पाये जाने वाले कोकाई वर्ग के बैक्टीरिया की दो जातियां जो मुख्य रूप से पीप उत्पन्न करती हैं।

होता है। इनके अतिरिक्त इनकी और भी कई जातियां हैं। बैक्टीरिया से उत्पन्न अधिकांश रोग एन्टीबायोटिक्स से नष्ट हो जाते हैं।

बैक्टीरिया के बाद वायरसों का नम्बर आता है। चेचक, खसरा, छोटी चेचक, इन्फ्लुएंजा, जुकाम और पोलियो रोग वायरसों से फैलते हैं। ये वायरस बैक्टीरिया से भी बहुत छोटे होते हैं और सामान्य माइक्रासकोप द्वारा ये दिखाई नहीं देते। आज तक जो औषधियां तथा एन्टीबायोटिक्स आविष्कृत हुई हैं उनमें से किसी का प्रभाव इन पर नहीं पड़ता अलबत्ता टीके लगवा लेने से वायरस से उत्पन्न होने वाले कुछ भयंकर रोगों से बचाव हो जाता है।

बैक्टीरिया से छोटे और वायरसों से कुछ बड़े एक बीच की जाति के जीवाणु होते हैं जिन्हें रिकेटसिया कहते हैं। हमारे देश में आंख के रोहे इन्हीं के कारण होते हैं।

प्रोटोजुआ को एक-कोशकीय जानवर (Animal) कहना चाहिए। इसका एक उदाहरण अमीबा है। एक प्रकार की पेचिश जिसे अमीबिक पेचिश कहते हैं एन्टअमीबा हिस्टोलिटिका नामक अमीबा के कारण होती है। मलेरिया प्लाज्मोडियम नामक एक प्रोटोजुआ के कारण होता है जिसे मलेरिया के मच्छर अपने डंक द्वारा मनुष्य के रक्त में प्रविष्ट कर देते हैं।

फंगस जाति के जीवाणुओं से दाद, सिर के बालों के रोग तथा पैरों की उंगलियों में एक विशेष प्रकार का रोग पसीने या पानी में पैर ज्यादा भीगते

रहने से होता है जिसमें उंगलियों के बीच में त्वचा गल जाती है और बड़ी खुजली होती है।

यीस्ट या खमीर जाति के जीवाणुओं के आक्रमण से प्रायः छोटे बच्चों में मुंह आना (Thrush) तथा स्त्रियों में एक विशेष प्रकार का प्रदर रोग हो जाता है।

कुछ रोग कृमियों (Worms) द्वारा भी उत्पन्न होते हैं। बच्चे के पेट में कीड़े उत्पन्न होकर दस्त, रक्त की कमी आदि उत्पन्न कर देते हैं।

संक्रामक रोग किस प्रकार फैलते हैं?

अधिकांश संक्रामक रोग वायु के माध्यम से फैलते हैं। श्वास सम्बन्धी रोगों का प्रसार प्रायः इसी माध्यम से होता है। संक्रमण ग्रस्त रोगी जब बोलता है तो उसके मुंह से निकलने वाली वाष्प की नन्हीं नन्हीं बूंदों (Droplets) के साथ रोग के जीवाणु वायु द्वारा छः फुट दूर तक बैठे हुए व्यक्तियों तक पहुंच जाते हैं और उन्हें रोगग्रस्त कर सकते हैं। यदि वह छींकता या खांसता है तो जीवाणु 20 फुट दूर तक पहुंच जाते हैं। जुकाम, इन्फ्लुएंजा, काली खांसी आदि लगभग 90% रोग इसी प्रकार फैलते हैं। इसे 'बिन्दुक संक्रमण' (Droplet Infection) कहा जाता है।

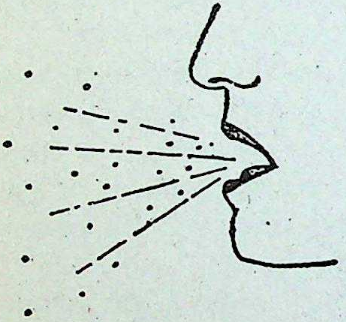

बिन्दुक संक्रमण

हैजा, पेचिश और टाइफाइड आदि का संक्रमण भोजन अथवा जल द्वारा फैलता है।

संक्रामक रोगों के फैलाने में मक्खियों का भी बहुत बड़ा हाथ होता है। टायफाइड या हैजे के रोगी के मल पर मक्खी बैठती है तो उसकी टांगों पर मल में उपस्थित जीवाणु चिपक जाते हैं। जब यही मक्खी किसी खाने की वस्तु पर बैठ जाती है तो अपनी टांगों पर चिपके हुए लाखों जीवाणुओं की फौज उस वस्तु पर छोड़ देती है। होटलों द्वारा भी ये रोग फैल जाते हैं। देहातों में प्रायः लोग

कुएं के पास बैठकर कपड़े धोने लगते हैं। रोगी व्यक्ति के पानी में भीगे कपड़ों की छीटों के साथ जीवाणु कुएं के पानी में मिल जाते हैं।

कुछ रोगों के जीवाणु त्वचा के कट जाने पर रक्त में प्रविष्ट हो जाते हैं। मलेरिया के मच्छर त्वचा में छिद्र करके इसमें प्लाज्मोडियम पहुंचा देते हैं। त्वचा छिल जाने पर पीप उत्पन्न करने वाले जीवाणु हमारे रक्त प्रवाह में पहुंच जाते हैं। भयंकर प्राण लेवा रोग टेटनस के जीवाणु हमारी त्वचा में जख्म होने पर ही प्रविष्ट हो सकते हैं।

कुछ रोग सम्पर्क द्वारा फैलते हैं। इसके उदाहरण सूजाक और सिफलिस हैं। रोगग्रस्त व्यक्ति से मैथुन करने पर ही ये रोग दूसरे व्यक्ति में पहुंचते हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य साधनों द्वारा भी संक्रामक रोग फैलते रहते हैं।

संक्रामक रोगों के इलाज में एन्टीबायोटिक्स, सल्फा ड्रग्ज तथा अन्य आधुनिक औषधियों का ही प्रयोग करें। घरेलू दवाइयां इन रोगों में काम नहीं करतीं।

ज्वर या बुखार

मनुष्य के शरीर का औसत तापक्रम 98.6 डिग्री फा० होता है। गर्मी, जाड़े, वर्षा सब ही ऋतुओं में उसके शरीर का तापमान यही रहता है। जब उसके शरीर का तापमान इससे बढ़ जाता है तो कहा जाता है कि उसे ज्वर या बुखार हो गया है। आपको मालूम होगा कि हमारे मस्तिष्क में एक 'ताप नियंत्रक केन्द्र' होता है जो हर समय हमारे शरीर के तापक्रम पर नियन्त्रण रखता है अर्थात् यह जब जरूरी हो तो शरीर के तापक्रम को घटा सकता है और जब जरूरत हो बढ़ा देता है। अगर हम वर्षा में भीग जाते हैं या ज्यादा ठण्ड लग जाती है तो यह ताप नियन्त्रण केन्द्र तुरन्त शरीर का तापक्रम बढ़ा देता है जिससे ठण्ड शरीर को नुक्सान न पहुंचा सके। इसी को हम कहते हैं कि ठण्ड लगने से बुखार हो गया।

अगर मनुष्य बहुत समय तक गन्दी जगहों पर बनने वाला या बासी सड़ा गला भोजन खाता रहता है तो धीरे-धीरे शरीर में जहर एकत्रित होता रहता है। जब यह जहर काफी मात्रा में एकत्रित हो जाता है तो यह केन्द्र जहर को मारने के लिए शरीर का तापक्रम बढ़ा देता है। इसी तरह अगर शरीर में किसी रोग के उत्पन्न करने वाले जीवाणु घुस जाते हैं तो इसकी सूचना तुरन्त इस केन्द्र को मिलती है, यह केन्द्र इन जीवाणुओं को मारने के लिए शरीर का तापक्रम बढ़ा देता है।

अत: ज्वर या बुखार स्वयं में कोई रोग नहीं है बल्कि यह एक चेतावनी है कि शरीर के अन्दर कोई गड़बड़ पैदा हो गई है। यह गड़बड़ मामूली भी हो सकती है जैसे कि सर्दी लग जाना, ज्यादा परिश्रम, तेज धूप लग जाना आदि और किसी भयंकर रोग के आक्रमण की सूचना भी हो सकती है।

अधिकतर बुखार मामूली से कारणों से आता है और दो-तीन दिन में आप ही ठीक हो जाता है किसी दवा-दारू की जरूरत नहीं पड़ती है।

बुखार चाहे किसी भी कारण से हो, रोगी को पूरी तरह आराम करना चाहिए और आरामदेह बिस्तर पर हवादार कमरे में लेट जाना चाहिए। चूंकि शरीर का तापक्रम बढ़ जाने तथा पसीना आने के कारण उसके शरीर में जल की कमी हो जाती है जिसके कारण कब्ज, सिरदर्द, बेचैनी, खुश्की आदि उत्पन्न हो जाते हैं अत: रोगी को आरम्भ से ही ठण्डा या गर्म पानी (जैसा भी वह पसन्द करे), दिन में कई बार पिलाना चाहिए। उसे दिन में कम-से-कम 2-3 लीटर पानी जरूर पिला देना चाहिए। इसके अतिरिक्त और कोई अन्न की बनी चीज 48 घण्टे तक रोगी को नहीं देनी चाहिए। कारण यह है कि ज्वर की अवस्था में पूरे शरीर के अन्दर भारी उथल-पुथल हो रही होती है, शरीर की रक्षा करने वाली शक्तियां आक्रमणकारी जीवाणुओं का मुकाबला करने तथा शरीर में एकत्रित जहरीले पदार्थों को बाहर निकालने का काम कर रही होती है। शरीर को रोग-मुक्त करने का यह कार्य तब ही अच्छी तरह हो सकता है जब रोगी का पेट खाली हो। अक्सर देखा जाता है कि ज्वर ग्रस्त रोगी खाना खाने के बाद शरीर में ज्यादा भारीपन या बेचैनी अनुभव करने लगता है, किसी-किसी को उल्टियां हो जाती हैं। अत: ज्वर ग्रस्त रोगी को चाय, शर्बत या पानी के अलावा कोई भी ठोस चीज

यहां तक कि पपीता जैसे फल भी खाने को नहीं देने चाहिए। अड़तालीस घण्टे के बाद उसे दाल का पानी, पपीता, चीकू आदि फल दे सकते हैं।

इनके अतिरिक्त रोगी को कोई दवा देने की कोई जरूरत नहीं है। पसीना लाकर ज्वर उतारने वाली किसी दवा का सेवन न तो स्वयं ही रोगी को करना चाहिए और न चिकित्सकों को ये दवाएं देना चाहिए।

तेज ज्वर का नियन्त्रण—तेज बुखार की गर्मी से रोगी के मस्तिष्क की रक्षा करना बड़ा जरूरी है क्योंकि इससे दिमाग की नसें फटकर रोगी की मृत्यु होने का खतरा रहता है। अतः जब बुखार 102 डिग्री फा० से ऊपर चढ़ने लगे तो तुरन्त ही इस पर नियन्त्रण करने का उपाय शुरू कर देना चाहिए।

इसके लिए सबसे अच्छा उपाय यह है कि एक छोटी-सी तौलिया को पानी में भिगोकर निचोड़ कर रोगी के सिर पर रखें। इससे सिर का दर्द तुरन्त कम हो जाता है। चार-पांच मिनट बाद इस तौलिया को फिर ठण्डे पानी में डुबो और निचोड़ कर रोगी के सिर पर रखना चाहिए। यदि इससे भी बुखार कम न हो तो रोगी को चादर उढ़ाकर ठण्डे पानी में भिगो कर निचोड़ी हुई तौलिया से उसके समस्त शरीर को पोंछें। इससे स्पंजिग करना कहते हैं। यह क्रिया उस समय तक करना चाहिए जब तक शरीर का ताप गिरकर 101 या 100 डिग्री फा० पर आ जाए। यह ताप आते ही स्पंजिग क्रिया रोक देना चाहिए। जब भी बुखार 101 डिग्री से ज्यादा बढ़ने लगे तो स्पंजिग द्वारा इसे नियन्त्रण में लाना चाहिए। स्पंजिग से रोगी को बड़ी शान्ति मिलती है। नींद अच्छी आती है, सिर में दर्द नहीं होता।

सिर में दर्द—ज्वर के रोगियों में प्रायः सिर में दर्द और हाथों-पैरों में दर्द जिसे 'हड़कल' होना कहा जाता है, पाए जाते हैं। यदि ये लक्षण अधिक कष्टदायक हों तो ऐस्प्रिन की 300 मिग्रा वाली एक या दो टिकियां छः-छः घण्टे बाद खिलाने से आराम मिल जाता है। कुछ रोगियों को ऐस्प्रिन माफिक नहीं बैठती, इसके सेवन से पेट में जलन और आंतों में गुडगुड होने लगती है उनको पैरासीटामोल की 500 मिग्रा की एक या दो टिकियां छः-छः घण्टे बाद खिला देनी चाहिए। यह औषधि ऐस्प्रिन की अपेक्षा बहुत कम हानिकारक है और ज्यादातर रोगियों को माफिक बैठ जाती है। इन औषधियों से ज्वर भी पसीना आकर कम हो जाता है।

ज्वर में अनिद्रा—यदि रोगी को ज्वर चढ़ा हुआ न हो परन्तु बेचैनी और हड़कल के कारण नींद न आ रही हो तो 30 मिलीलीटर (एक औंस) ब्रांडी या व्हिस्की पानी में मिलाकर पिला देनी चाहिए। जो रोगी मदिरा से घृणा करते हों अथवा यह उपलब्ध न की जा सके तो कामपोज (Calmpose) या वेलियम (Valium) की 5 मिलीग्राम की एक टिकिया सेवन करा देने से रोगी को नींद आ जाती है।

स्मरण रखना चाहिए कि रोगी को या तो ब्रांडी दी जाए अथवा यह दवा, दोनों ही चीजें नहीं देनी चाहिए।

कब्ज—बुखार के रोगी को कब्ज नहीं होने देना चाहिए क्योंकि कब्ज रहने से उसके शरीर में बेचैनी रहती है। कब्ज न होने देने के लिए रोगी को पपीता, खरबूजा, चीकू आदि फल खिलाना चाहिए। गुलकन्द देने से भी दस्त साफ हो जाता है। रात्रि को सोते समय फिलिप्स के मिल्स आफ मैगनेशिया की चार टेबलेट चाब कर ऊपर से एक-दो घूंट पानी पी लेने से भी सुबह को दस्त साफ हो जाता है।

मोतीझरा या टाइफाइड

यह एक संक्रामक रोग है और भारत में हर वर्ष हजारों बच्चों व वयस्क व्यक्तियों को यह रोग हो जाता है। यह 'साल्मोनेला टाइफी' नामक जीवाणुओं से फैलता है। इस रोग के जीवाणु पानी, वायु अथवा भोजन के माध्यम से शरीर में पहुंचकर व्यक्ति की आंतों पर आक्रमण कर देते हैं और आंतों को काटने लगते हैं। यदि परहेज और उपचार दोनों ही अत्यन्त सावधानी से न हों तो जीवाणुओं के आक्रमण से आंतें गल सड़ जाती हैं जिससे रोगी की मृत्यु हो जाती है।

सौभाग्यवश जो व्यक्ति एक बार इस रोग में ग्रसित होकर पूर्ण स्वास्थ्य लाभ कर लेता है उसको जीवन में दोबारा यह रोग नहीं होता।

इस रोग का आक्रमण तीन सप्ताह अर्थात् 21 दिन तक रहता है। चौथे सप्ताह में बुखार उतर जाता है। चूंकि यह रोग इलाज न होने पर भी अपनी 21 दिन की मियाद पूरी करके स्वयं ही उतर जाता है इसलिए इसको 'मियादी बुखार' भी कहते हैं।

लक्षण—प्रारम्भ में यह ज्वर सामान्य ज्वर की तरह चढ़ता है। आक्रमण के समय शरीर, कमर और सिर आदि में दर्द और बेचैनी-सी रहती है। परन्तु तीसरे या चौथे दिन से स्पष्ट पहचान होने लगती है कि रोगी को टाइफाइड ज्वर हो गया है। यह पहचान उस लक्षण से होती है कि जिस प्रकार सीढ़ी पर आदमी एक-एक पैड़ी चढ़ता है उसी प्रकार इस ज्वर में ताप रोजाना थोड़ा-थोड़ा बढ़ता चला जाता है, किसी भी समय ज्वर उतरता नहीं। पहले सप्ताह में रोगी के दांतों और जीभ पर एक तरह की मैल जैसी दिखाई देती है, चेहरा लाल रहता है, पेट भारी रहता है, प्राय: दस्त भी होने लगते हैं और इस सप्ताह के अन्त तक ज्वर का तापमान बढ़कर 104 डिग्री तक हो जाता है।

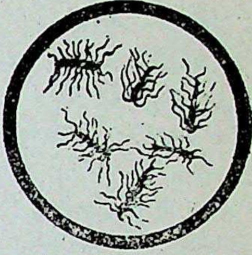

साल्मोनेला टाइफी

दूसरे सप्ताह में भी तापमान वही लगभग 104-105 डिग्री रहता है और प्राय: रोगी के सीने तथा गर्दन पर नन्हें-नन्हें लाल दाने निकल आते हैं। ये दाने भी पककर सफेद मोती की तरह चमकने लगते हैं और 3-4 दिन में स्वयं ही दाने सूख जाते हैं। इन दानों की मोती जैसी आकृति के कारण ही शायद आम लोग इस रोग को मोतीझरा कहते हैं। इन दिनों रोगी जो ज्वर की उच्च अवस्था में होता है प्राय: सन्निपात की तरह अनाप-शनाप बकने लगता है। अगर रोगी को दस्त के साथ अफारा हो तथा टट्टी में रक्त भी आने लगे तो समझना चाहिए कि रोगी के प्राण संकट में पड़ गए हैं।

तीसरे सप्ताह में सवेरे के समय ज्वर कुछ हल्का रहता है और शाम को कुछ तेज। यदि रोग ठीक-ठिकाने से चल रहा है तो आज तो तापक्रम है कल को उससे कुछ कम इसी प्रकार धीरे-धीरे ज्वर उतरता जाता है। इस सप्ताह में रोगी काफी दुर्बल हो जाता है, वह अक्सर अनर्गल प्रलाप करने लगता है। पेट अब भी फूला-फूला-सा रहता है।

चौथे सप्ताह में आरम्भ से ही रोगी आरोग्य होने लगता है, केवल कमजोरी बहुत ज्यादा रहती है। आंतों के जख्म भरने लगते हैं। रोगी की सामान्य स्थिति में बहुत सुधार हो जाता है। यद्यपि इस सप्ताह में ताप उतर जाने के कारण रोगी

रोग मुक्त होने की स्थिति में पहुंच गया होता है परन्तु इस सप्ताह में वह बड़े ही नाजुक दौर से गुजर रहा होता है क्योंकि उसकी आंतों में अभी भी जख्म होते हैं।

अत: अभी भी उसको ठोस आहार नहीं देना चाहिए और न ही उसे चलना-फिरना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से उसकी आंत फट सकती है जो उसकी मृत्यु का कारण बन सकती है। इस सप्ताह में की गयी लापरवाही से ही अनेकों रोगियों में दोबारा ज्वर का आक्रमण हो जाता है और अनेकों रोगी मर भी जाते हैं।

रोग से बचने के उपाय—इस रोग से बचाव के लिए टीके भी लगते हैं। इसके टीके को T. A. B. Vaccine कहते हैं। टाइफाइड प्राय: मार्च या अप्रैल में अधिक फैलता है अत: इसका टीका फरवरी के प्रारम्भ में ही लगवा लेना चाहिए। स्मरण रहना चाहिए कि इस टीके का प्रभाव 10 दिन बाद शुरू होता है और छ: महीने से लेकर एक वर्ष तक बना रहता है। अत: हर वर्ष इसका टीका लगवाना जरूरी होता है। ये टीके गर्भिणी स्त्रियों के, बूढ़े व्यक्तियों के तथा उन व्यक्तियों के जो डायबिटीज, गुर्दों के रोग अथवा क्षय रोग के मरीज हैं, नहीं लगाना चाहिए और न ही संक्रामक रोग से ग्रस्त व्यक्तियों के लगाना चाहिए।

टाइफाइड के रोगी को पूर्ण विश्राम करना चाहिए। चलने-फिरने की सख्त मनाही है। उसे केवल दूध ही देना चाहिए। रोगी को मीठे सन्तरे या मुसम्बी का रस भी दिया जा सकता है। दूध को स्वादिष्ट बनाने के लिए इनमें बोर्नविटा मिलाया जा सकता है।

रोगी को रोजाना सुबह मुंह साफ करना और दांत मांजना चाहिए। खाट पर साफ कपड़े होने चाहिए और रोगी का कमरा हवादार होना जरूरी है।

चिकित्सा—जब चार-पांच दिन तक किसी रोगी का बुखार न उतरे और रोजाना थोड़ा-थोड़ा बढ़ता चला जाए तो समझ लेना चाहिए कि उसे टाइफाइड हो गया है। इस समय उसे तुरन्त ही किसी अच्छे चिकित्सक के पास ले जाना चाहिए क्योंकि अगर स्वयं चिकित्सा करने की कोशिश की जाए तो एक यह खतरा रहता है कि अगर आगे चलकर रोग में कोई नई उलझन या बखेड़ा पैदा हो जाए तो सम्भालना कठिन हो जायेगा।

एलोपैथी में इस रोग की सर्वोत्तम औषधि क्लोरमफेनिकोल मानी जाती है जो 'क्लोरोमायसेटीन' आदि व्यापारिक नामों से बिकती है। कैपसूल में 250 मिलीग्राम दवा होती है। जवान रोगी को चार-चार घंटे बाद दो-दो कैपसूल उस दिन तक देते रहते हैं जब तक कि ज्वर उतर न जाये। यदि ज्वर की पहचान होते ही तुरन्त यह इलाज शुरू कर दिया जाए तो 48 घंटे के अन्दर ही रोगी की हालत बहुत अच्छी हो जाती है और उसका ज्वर कम होने लगता है तथा चौथे-पांचवें दिन तक ज्वर उतर कर नार्मल हो जाता है। परन्तु जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि उसकी आंतों में अभी जख्म हो सकते हैं इसलिए उसे कम-से-कम एक सप्ताह तक और रोजाना दिन में तीन बार एक-एक कैपसूल सेवन कराते रहना चाहिए ताकि बुखार पलट न आए।

यदि आप स्वयं ही चिकित्सा कर रहे हैं तो दो बातें अच्छी तरह स्मरण रखना चाहिए। एक तो यह कि क्लोरमफेनिकोल हमेशा ही किसी विश्वसनीय औषधि निर्माता कम्पनी का बना होना चाहिए। पार्क डेविस कम्पनी का 'क्लोरोमायस्टीन' नाम से बिकता है, भारत भारत की IDPL कम्पनी का बना हुआ खरीद सकते हैं। साराभाई केमीकल्स का Rechlor नाम से मिलता है।

दूसरी बात यह है कि यह देख लेना चाहिए कि कैपसूल में औषधि 250 मिलीग्राम है या 500 मिलीग्राम है। ऊपर जो मात्रा बताई गई है वह 250 मिलीग्राम वाले की है। यदि इसमें 500 मिलीग्राम औषधि है तो बजाए दो कैपसूलों के एक कैपसूल देना चाहिए।

ज्वर से पूरी तरह मुक्त होने के बाद भी रोगी को कम-से-कम दो हफ्ते तक आराम करना चाहिए। ज्वर मुक्त होने पर कुछ रोगियों को बड़े जोर की भूख लगती है। रोगी भूखे भेड़िये की तरह रोटी पर टूट पड़ता है। इस समय बड़ी सावधानी की जरूरत है। उसे दूध ही दिया जाए रोटी हर्गिज न दी जाये, यदि डाक्टर सलाह दे तो पतली खिचड़ी दी जा सकती है परन्तु यदि रोगी को दस्त हों तो खिचड़ी भी नहीं देना चाहिए।

नोट—यदि रोगी के दस्तों में खून की बूंद दिखाई दे तो समझना चाहिए कि रोग बहुत गम्भीर हो गया है, रोगी की आंतें जीवाणुओं ने काट दी हैं। इस समय उसे तुरन्त ही हस्पताल में भर्ती करा देना चाहिए क्योंकि उसके शरीर में रक्त देने की जरूरत पड़ सकती है।

टेटनस

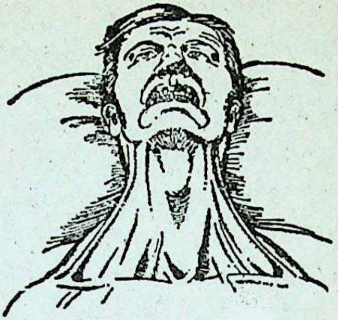

टेटनस रोग में बन्द जबड़ा

टेटनस या धनुष्टंकार एक भयंकर रोग है जिसमें ग्रसित रोगी का बचना अत्यन्त कठिन है। अच्छे से अच्छा इलाज होने पर भी इसके आधे रोगी मर ही जाते हैं। यह रोग 'क्लोस्ट्रीडियम टिटैनी' नामक जीवाणु के शरीर में प्रविष्ट हो जाने पर होता है। टेटनस के जीवाणु भूमि, गोबर, सड़क की धूल आदि में रहते हैं और शरीर में कहीं जख्म हो जाने पर घाव में घुस कर पूरे शरीर में फैल जाते हैं। एक से लेकर दो सप्ताह में ही पूरे शरीर में विष फैला देते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि ढोर-डंगरों के गोबर तथा घोड़े की लीद में ये जीवाणु सर्वाधिक संख्या में रहते हैं।

लक्षण—इनके विष के प्रभाव से समस्त शरीर की पेशियों में ऐंठन होने लगती है, पहले गर्दन घुमाने में कठिनाई होती है फिर गर्दन की पेशियां अकड़ जाती हैं, रोगी को दौरे पड़ते हैं जिनमें जबड़े बन्द हो जाते हैं। पेट, हाथ आदि पत्थर की तरह सख्त हो जाते हैं। कभी-कभी रोगी का पूरा शरीर धनुष की तरह ऐंठ जाता है। दांत मजबूती से भिचकर आगे निकल आते हैं, रोगी की आकृति बहुत भयंकर हो जाती है और देखते-देखते रोगी मर जाता है। अगर आपने कभी म्युनिसिपैलिटी वालों द्वारा दिए जाने वाले कुचले का जहर खाकर झटका ले-लेकर मरते हुए कुत्ते को देखा है तो समझ लीजिए कि टेटनस के रोगी की मृत्यु इसी तरह होती है।

बचाव—इस रोग में पक्का इलाज नहीं है अतः बचाव करना ही बुद्धिमानी की बात है। अगर आपके साथ सड़क पर, कूड़े के ढेर के पास, मवेशियों के बंधने के स्थान पर अथवा धूल मिट्टी के स्थान में कोई दुर्घटना ऐसी होती है जिसमें शरीर के किसी अंग में जख्म हो जाता है और जख्म पर वहां की धूल मिट्टी लग जाती है या कोई जंग लगा हुआ हथियार या कील त्वचा में घुस जाती है तो जख्म

को तुरन्त किसी जीवाणुनाशक दवा जैसे डेटोल मिले पानी से और यदि जीवाणु-नाशक दवा उपलब्ध न हो तो ताजा पानी से अच्छी तरह धोकर साफ कपड़ा बांध दीजिए। परन्तु जख्म के मुंह को बन्द न करें और जख्म पर हवा लगने दें क्योंकि इस रोग के जीवाणु हवा बन्द स्थान में जल्दी बढ़ते हैं। इसके बाद जितनी जल्दी हो सके डाक्टर के पास जाकर टेटनस से रक्षा करने वाली दवा का इन्जेक्शन लगवा लीजिए। बच्चों को 3 से 6 मास की आयु में पहली बार, फिर 5 वर्ष की आयु और फिर 15 से 19 वर्ष की आयु में एक-एक बार टेटनस वैक्सीन का टीका लगवा लिया जाए तो वे इस रोग के आक्रमण से सुरक्षित रहते हैं। जो लोग खेतों में, मकानों व सड़कों की तोड़फोड़ के कार्यों में तथा मिलिट्री में कार्य करते हैं तथा वे व्यक्ति जो लगातार मिट्टी के सम्पर्क में रहते हैं उन्हें टेटनस से रक्षा करने वाले इन्जेक्शन उचित अवधियों के पश्चात् लगवाते रहना चाहिए।

बहुत से घरों में बजाय हस्पताल में जाने के घर पर ही प्रसव कराने को पसन्द किया जाता है। घर पर जो दाइयां आती हैं वे सफाई के महत्व को नहीं समझतीं। इनके द्वारा प्रयोग किये जाने वाले नाल काटने के चाकू आदि में रोगों के जीवाणु लगे रहते हैं जिनके कारण बहुत से शिशु तथा जच्चाएं जीवाणु-जनित रोगों का शिकार बन जाती हैं। प्रतिवर्ष हजारों शिशु व प्रसूताएं इन दाइयों के द्वारा टेटनस में ग्रसित होकर मर जाती हैं।

गर्भवती स्त्रियों को चाहिए कि वे गर्भावस्था के दिनों में अपने डाक्टर की सलाह से टेटनस रोधक वैक्सीन के टीके उचित अवधि का अन्तर देकर लगवा लें ताकि प्रसव के समय उनके तथा उनके बच्चे के इस रोग में ग्रसित हो जाने का खतरा नहीं रहे। यह सावधानी दोनों की जान बचा सकती है।

हमारे देहातों में घरों को गोबर से लीपने का आम रिवाज है। यह ध्यान रखना चाहिए कि जिस कोठरी में प्रसव कराया जाए उसे कम-से-कम 8-10 दिन पहले लीप लिया जाए। ताजा लिपी कोठरी में गोबर में से टेटनस के जीवाणु जच्चा और बच्चा दोनों को लग सकते हैं।

मेनिनजाइटिस

मनुष्य की रीढ़ की हड्डी के अन्दर से लेकर खोपड़ी के अन्दर पूरे मस्तिष्क तक का भाग तीन मजबूत झिल्लियों में बन्द रहता है। इन झिल्लियों को मैनिन्जेज कहते हैं। इन झिल्लियों के अन्दर एक द्रव पदार्थ भरा रहता है जिसके कारण हमारा मस्तिष्क और सुषुम्ना झटकों और चोटों से सुरक्षित रहते हैं क्योंकि यह द्रव पदार्थ झटकों को स्वयं बर्दाश्त करता रहता है।

कभी-कभी रोगोत्पादक जीवाणुओं को इन झिल्लियों में प्रविष्ट होने का अवसर मिल जाता है तो ये सूज जाती हैं और बच्चा रोगग्रस्त हो जाता है। यदि किसी स्त्री को तपेदिक हो तो बच्चे के जन्म के समय जीवाणु नाभि के रास्ते बच्चे के शरीर में प्रवेश पा जाते हैं, बच्चे के कान के संक्रमण या काली खांसी के जीवाणु प्रविष्ट हो सकते हैं। कुछ माताओं की योनि में उपस्थित ई० कोलाई नामक जीवाणु बच्चे के शरीर में नाभि नाल के मार्ग से प्रविष्ट हो सकते हैं। किसी संक्रामक रोग में ग्रस्त व्यक्ति के सम्पर्क में आने पर भी बच्चा संक्रमण ग्रहण कर लेता है।

लक्षण—बच्चे को बुखार और सिर में भी बहुत दर्द होता है, बच्चे की गर्दन अकड़कर थोड़ी पीठ की ओर मुड़ी रहती है। कमर इतनी ज्यादा अकड़ी होती है कि यदि बच्चे की टांगें पकड़कर घुटनों को मोड़कर सिर को घुटनों के बीच लाने की कोशिश की जाए तो सफलता नहीं मिलती। एक वर्ष से कम आयु के बच्चों में खोपड़ी में स्थित ब्रह्मरंध्र या फौन्टेनेल (जो हर समय धड़कता दिखाई देता है) फूलकर बताशे की तरह ऊपर को उठ आता है, बच्चा या तो उनींदा-सा रहता है अथवा चिड़चिड़ा हो जाता है। कुछ भी खाना-पीना नहीं चाहता, प्रायः उल्टियां भी होती हैं। कभी-कभी दौरे भी पड़ते हैं। बच्चे की हालत काफी खराब होती जाती है और अन्त में वह बेहोश हो जाता है।

चिकित्सा—तुरन्त डाक्टरी सहायता लें। डाक्टर प्रायः रीढ़ की हड्डी में इन्जेक्शन की सूई डालकर मैनिन्जेज के अन्दर का फालतू द्रव खींच लेते हैं और इसी मार्ग से पेनिसिलिन का इन्जेक्शन लगाते हैं। यह वास्तव में डाक्टरों द्वारा इलाज किए जाने वाला रोग है।

यक्ष्मा (तपेदिक)

यक्ष्मा, क्षय या तपेदिक जिसे संक्षेप में टी० बी० भी कह देते हैं एक बहुत ही भयंकर बीमारी है जो माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस नामक बैक्टीरिया द्वारा फैलती है। यक्ष्मा के जीवाणु अधिकतर व्यक्तियों के फुफ्फुसों को ही अपना निशाना बनाकर उन्हें रोगग्रस्त करते हैं परन्तु यह शरीर के किसी भी अंग पर आक्रमण कर सकते हैं। यद्यपि ये जीवाणु किसी भी व्यक्ति को रोगी कर सकते हैं परन्तु यक्ष्मा रोग का शिकार अधिकतर वे ही व्यक्ति होते हैं जो शारीरिक रूप से कमजोर हैं, जिन्हें पौष्टिक भोजन खाने को नहीं मिलता अथवा जो इसके रोगी के निकट सम्पर्क में रहते हैं।

आज भारत में लगभग अस्सी लाख व्यक्ति यक्ष्मा से पीड़ित हैं। हर वर्ष भारत में पांच लाख व्यक्ति यक्ष्मा से मर जाते हैं।

यक्ष्मा यद्यपि भयंकर रोग है परन्तु आजकल अनेकों ऐसी प्रभावशाली औषधियां आविष्कृत हो गई हैं जिन्हें यदि यक्ष्मा के प्रारम्भ होते ही सेवन करना शुरू कर दिया जाए तो रोगी पूरी तरह स्वस्थ हो सकता है। इलाज में जितनी अधिक देर की जाएगी रोगी को रोग से मुक्त होने में उतना ही अधिक समय लगेगा। अतः प्रत्येक व्यक्ति को जानना चाहिए कि यक्ष्मा के क्या लक्षण होते हैं ताकि पास-पड़ोस या अपने परिवार में किसी व्यक्ति में उन लक्षणों के दिखाई देते ही तुरन्त चिकित्सक की सलाह ली जा सके।

यक्ष्मा के समस्त रोगियों में नीचे लिखे लक्षण देखने में आते हैं :

1. भोजन में अरुचि, भूख न लगना अथवा शरीर का वजन घटते जाना।
2. संध्या के समय हल्का-हल्का ज्वर जो 99.5, 100 या 101 अंश फा० हो सकता है।
3. रात्रि को सोते में पसीना आना।

यक्ष्मा रोग के ये तीन प्रमुख प्रारम्भिक लक्षण हैं। किसी रोगी में इनमें से केवल एक ही लक्षण उपस्थित रह सकता है। तीन में से दो लक्षण मौजूद रहना यक्ष्मा रोग हो जाने की सूचना देते हैं। यदि तीनों लक्षण किसी व्यक्ति में 3-4 सप्ताह से अधिक समय तक रहें तो समझा जा सकता है कि वह व्यक्ति यक्ष्मा का रोगी हो गया है। यदि इन लक्षणों के साथ ही ऐसा इतिहास मिले कि उस व्यक्ति

है परिवार के किसी सदस्य को पहले यक्ष्मा रह चुका है अथवा इस समय कोई यक्ष्मा का रोगी है तो इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि वह यक्ष्मा का रोगी हो गया है।

यक्ष्मा का संदेह होने पर तुरन्त ही चिकित्सक से सम्पर्क करना चाहिए ताकि एक्स-रे आदि परीक्षणों द्वारा यह निर्णय किया जा सके कि यक्ष्मा फेंफड़ों में है या शरीर के किसी अन्य अंग में है और उसी के अनुसार चिकित्सा की जा सके।

चिकित्सा—यक्ष्मा की चिकित्सा में रोगी को अकेली औषधि नहीं दी जाती बल्कि दो या तीन औषधियां रोजाना सेवन करना पड़ती हैं जिसका मुख्य कारण यह है कि यक्ष्मा के जीवाणु बड़ी कठिनता से मरते हैं। यदि कोई अकेली औषधि दी जाती है तो कुछ ही दिनों में वे उस औषधि का मुकाबला करने लगते हैं और उस औषधि का प्रभाव उन पर पड़ना बन्द हो जाता है। इसी कारण से इन पर दो या तीन औषधियों द्वारा आक्रमण किया जाता है। साधारणतः नीचे लिखी में से दो या तीन औषधियां सेवन कराई जाती हैं :

- स्ट्रेप्टोमाइसीन के इन्जेक्शन
- आइसोनियाजिड (I.N.H.) टेब्लेट
- पास (P.A.S.) टेब्लेट
- थायासिटाजोन

डाक्टर के बताए निर्देशों के अनुसार इनमें से कम-से-कम दो औषधियों का प्रतिदिन सेवन करना जरूरी है। स्मरण रखना चाहिए कि यक्ष्मा की चिकित्सा में एक से लेकर दो वर्ष तक लग सकते हैं अतः जब तक डाक्टर आज्ञा न दे औषधियों का सेवन करते रहना जरूरी है।

इसके साथ ही रोगी को समुचित मात्रा में प्रोटीन तथा विटामिन युक्त पौष्टिक भोजन मिलना चाहिए। रोगी को अच्छी तरह विश्राम और निद्रा भी जरूरी है परन्तु हल्का-फुल्का काम करते रहा जा सकता है।

छोटे बच्चों में यक्ष्मा का निदान—बच्चों में प्रायः वयस्क आदमी की तरह संध्या के समय ज्वर हो जाना अथवा खांसी जैसे लक्षण नहीं दिखाई पड़ते। बच्चों में यक्ष्मा का महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि अच्छी तरह खाते-पीते हुए भी उनका वजन घटता चला जाता है। अतः यदि अच्छी तरह भोजन करने वाले किसी बच्चे का लगातार दो महीने तक वजन न बढ़े तो उसे यक्ष्मा होने का संदेह किया जा सकता है। यदि किसी बच्चे को दो सप्ताह से अधिक समय तक खांसी बनी रहे, अथवा

उसे सांस लेने में कष्ट होता हो अथवा यकायक उसका वजन घटने लगे तो बच्चे में यक्ष्मा का संदेह करते हुए तुरन्त डाक्टर को दिखाना चाहिए। छोटे बच्चों में यक्ष्मा बड़ी विनाश लीला दिखाता है अतः अभिभावकों को इस सम्बन्ध में हमेशा सचेत रहना चाहिए।

हैजा

आज से 40-50 वर्ष पहले हैजे की महामारी अक्सर फैलती रहती थी परन्तु अब हमारे राज्यों के स्वास्थ्य विभाग संक्रामक रोगों पर कड़ी निगरानी रखते हैं अतः जहां किसी नगर में यह प्रारम्भ हुआ कि स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारी वहां पहुंचकर तुरन्त इसकी रोकथाम कर देते हैं। इतना होते हुए भी कभी-कभी इसका प्रकोप हो जाता है और बहुत से लोग इसमें अपनी जान गंवा बैठते हैं।

साधारणतः हैजा किसी बड़े मेले में फैलता है। यहां पर खुली हुई खाने की चीजें बिकती हैं। इतने बड़े मेले में हैजे का कोई ऐसा रोगी पहुंच ही जाता है जो कुछ समय पहले रोग मुक्त हुआ है परन्तु उसके मल में अभी भी हैजे के जीवाणु उपस्थित हैं। इन लोगों के मल पर मक्खियां बैठ कर रोग के जीवाणुओं को अपनी टांगों में चिपटा लेती हैं और जब ये ही मक्खियां खाने-पीने की किसी बिना ढकी चीज पर बैठती हैं तो ये जीवाणु उन वस्तुओं में पहुंच जाते हैं और इन्हें खाने वालों को हैजा हो जाता है। ये ही रोगी यात्री जब घर लौटते हैं तो रास्ते में पड़ने वाले नगरों में रोग को फैलाते चले जाते हैं। इसलिए सरकार की ओर से बड़े मेलों व कुंभ आदि में जाने वालों के हैजे के टीके लगाने का प्रबन्ध रखा गया है।

रोग के लक्षण—हैजा रोग के कारक जीवाणु जिनका नाम 'विब्रियो कालेरी' है शरीर में पहुंचने के कुछ ही घण्टों में व्यक्ति रोगग्रस्त हो जाता है। उसे उल्टियां और दस्त होने लगते हैं। पहले तो आमाशय में उपस्थित पदार्थ वमन में निकलते हैं परन्तु फिर सफेद रंग का जल जैसा पदार्थ उल्टियों में आने लगता है। वमन बड़े-बड़े होते हैं, उनमें तरल पदार्थ की मात्रा अधिक होती है। धीरे-धीरे उल्टियों की संख्या बढ़ती जाती है और वे कुछ मिनटों के अन्तर से ही होने लगती हैं। दस्तों की संख्या भी बहुत बढ़ जाती है। पहले दो-तीन दस्तों में मल निकलता है परन्तु बाद में चावलों के धोवन जैसे रंग के पतले दस्त होने लगते हैं। इन दस्तों

और उल्टियों में रोगी के शरीर से बहुत अधिक पानी निकल जाने से निर्जलीकरण की स्थिति आ जाती है और रोगी मर जाता है।

चिकित्सा—हैजा बहुत भयंकर रोग है और समुचित चिकित्सा का प्रबन्ध न होने पर रोगी की मृत्यु हो सकती है अतः रोगी को तुरन्त ही हस्पताल में ले जाना चाहिए। यह स्मरण रखना चाहिए कि हैजे के जीवाणुओं को नष्ट करने वाली कोई भी दवा नहीं है परन्तु फिर भी दो कैंप्सूल 250 मिलीग्राम के टेट्रा-साइक्लीन अथवा क्लोरमफेनिकोल के रोगी को मुख द्वारा सेवन करा दें तथा हर छः-छः घण्टे पर उस समय तक सेवन कराते रहें जब तक दस्त और वमन नियन्त्रण में न आ जाएं। यदि रोगी मुख द्वारा औषधि न ले सके तो ये ही औषधियां इन्जेक्शन द्वारा दी जाती हैं। ये औषधियां जीवाणुओं की वृद्धि को रोकती हैं।

हैजा एक स्वयं सीमित रोग है। इसका अर्थ यह है कि कुछ घण्टों के बाद रोग स्वयं समाप्त हो जाता है परन्तु इतने समय में उल्टियों और दस्तों के द्वारा शरीर से इतना जल और लवण निकल जाते हैं कि निर्जलीकरण (Dehydration) हो जाता है जिससे रोगी मर जाता है। अतः हैजे के उपचार में सबसे बड़ी बात यह कि रोगी में निर्जलीकरण की स्थिति न आने दी जाये। इसके लिए पानी में खाने का नमक, सोडा तथा चीनी मिलाकर एक पेय बनाया जाता है जिसे पुनःआर्द्रीकरण पेय कहते हैं (इसका विवरण 'अतिसार' के अन्तर्गत दिया गया है) यह पेय थोड़ी-थोड़ी देर बाद रोगी को बराबर पिलाते रहें और उधर हस्पताल में ले जाने की तैयारी कर दें। रास्ते में रोगी को यह पेय बराबर पिलाते रहें भले ही उसे उल्टियां होती रहें। इस पेय को देते रहने से रोगी के शरीर में निर्जलीकरण नहीं हो पाएगा। कुछ रोगी केवल इसी पेय द्वारा ठीक हो जाते हैं अन्यथा शिरा मार्ग से उसके शरीर में लवण जल डाक्टर द्वारा पहुंचाया जाएगा।

हैजे के रोगी के मल और उल्टियों पर तुरन्त ही मिट्टी या राख डाल कर ढक देना चाहिए ताकि मक्खियां इन पर बैठ कर अन्य व्यक्तियों को रोगग्रस्त न कर सकें। इसके बाद इनको किसी ऐसे स्थान पर जो कुएं या पीने के पानी के अन्य श्रोत से काफी दूरी पर हो जमीन में गड्ढा खोद कर दबा देना चाहिए।

पेचिश

आमातिसार, आंव, मरोड़ या पेचिश उस रोग को कहते हैं जिसमें आंव के साथ बहुत दस्त होते हैं (चिकने सफेद लसदार मल को आंव कहते हैं)। लोग सभी आमातिसारों को एक ही रोग मानते हैं और समझते हैं कि एक ही कारण से यह उत्पन्न होता है। परन्तु विज्ञान से यह सिद्ध हो चुका है कि कम-से-कम दो प्रकार के आमातिसार हैं जो एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं, इनकी चिकित्सा भी भिन्न रीति से होती है। एक प्रकार का आमातिसार अमीबा (Amoeba) के कारण होता है। यह एक बहुत ही नन्हा जन्तु या जीवाणु है जो केवल सूक्ष्म दर्शक-यन्त्र (माइक्रोस्कोप) से ही देखा जा सकता है। आमातिसार की दूसरी जाति एक बहुत नन्हें वानस्पतिक जीवाणु (Bacillus बैसीलस) के कारण होती है। इसलिए पहले आमातिसार को अमीबिक और दूसरे को बैसिलरी आमातिसार कहते हैं।

अमीबिक और बैसिलरी दोनों प्रकार की पेचिश का जन्म गन्दे जल से होता है। तालावों में अमीबा उत्पन्न होते हैं। इन तालाबों का पानी सब्जियों में देने से अमीबा उन पर लग जाते हैं। इन सब्जियों को कच्चा खाने पर अमीबा पेट में पहुंच जाते हैं। तालाबों में सिंघाड़े तथा कमलककड़ी पैदा होती हैं, इनके खाने से भी अमीबा पेट में पहुंच जाते हैं। देहातों में लोग तालाबों के पास टट्टी करते हैं। यह पाखाना हवा तथा वर्षा से तालाब में पहुंच जाता है। इस पाखाने में मनुष्य की आंतों में स्थित जीवाणु तथा अमीबा होते हैं। इन जलाशयों में शौच लेने से ये हाथों पर चिपक जाते हैं और यदि शौच के बाद हाथों को अच्छी तरह मांझ कर साफ न किया जाए तो ये पेट में पहुंच जाते हैं। मक्खियों द्वारा भी ये रोग फैलते हैं। कभी-कभी हमारी आंतों में बने रहने वाले बैसिलस (जीवाणु) हमारे कमजोर हो जाने पर अपनी संख्या बढ़ाकर बैसिलरी पेचिश उत्पन्न कर देते हैं।

लक्षण—आंव का पहला लक्षण यह है कि पेट में नाभि के पास मरोड़ मालूम पड़ता है। अक्सर मतली भी आती है। दर्द के बाद दस्त शुरू होते हैं और कई पतले दस्त होते हैं। ऐसा एक, दो या तीन दिन तक हो सकता है। अभी तक रोग अतिसार अर्थात् पेटझरी ही जान पड़ता है। तब पेट का मरोड़ धीरे-धीरे तीव्र हो

जाता है और गुदा के पास जलन और छरछराहट होती है और दस्त करने में अधिक जोर लगाना (कांखना) पड़ता है। दस्त पतला रहता है और अन्न उसमें सफेद लसदार पदार्थ, जिसे आंव कहते हैं और जिसके कारण रोग का नाम आंव पड़ा है, रहता है। अक्सर खून भी रहता है। जब रोग अधिक प्रचण्ड हो जाता है तो दस्त में मल नहीं रहता, केवल खिजड़े-खिजड़े रहते हैं। ऐसा जान पड़ता है जैसे कच्चा मांस पानी में मसलकर बहाया गया हो। दस्त में विचित्र और बहुत अधिक दुर्गन्ध रहती है। दिन भर में कई-कई बार दस्त मालूम होता है। कभी-कभी तो बराबर मल त्याग करने की आवश्यकता जान पड़ती है और इतना न हुआ तो भी एक दिन रात में दस से लेकर बीस बार दस्त हो सकता है। रोगी के जरा भी चलने पर मल त्याग की इच्छा बढ़ जाती है। बार-बार पेशाब भी लगता है। थोड़ा-बहुत ज्वर भी आता है, परन्तु इसकी मात्रा किसी में कम, किसी में अधिक, रहती है। कभी-कभी ज्वर इतना कम रहता है कि पता भी नहीं चलता, परन्तु दूसरों में चेहरा लाल, त्वचा रूखी, नाड़ी तीव्र और जीभ गन्दी हो जाती है। पेट को दबाने से पीड़ा होती है।

आमातिसार की उचित चिकित्सा न की जाये तो यह जड़ पकड़ लेता है और तब जीर्ण आमातिसार (संग्रहणी) रोग हो जाता है। इसलिए आमातिसार की चिकित्सा आरम्भ से ही सावधानी से करना चाहिए।

चिकित्सा—यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध हो गई है कि बेल का फल जिसे कहीं-कहीं बेल पत्थर भी कह देते हैं आंतों के रोग में अत्यन्त लाभदायक है। बेल का फल चैत से लेकर आषाढ़ के महीने तक बाजार में आता है और इन्हीं दिनों पेट के रोग ज्यादा होते हैं अतः इन दिनों होने वाली पेचिश में सबसे पहले रोगी को पेट भर कर पक्का बेल खिला देना चाहिए। यह आंतों के अन्दर से दूषित मल को निकाल देता है जिससे रोगी को बड़ा चैन मिलता है। अगर बेल न मिले तो बेल का मुरब्बा 100 से 150 ग्राम खिला दें।

एक अन्य वनस्पति जन्य पदार्थ जो आंतों के लिए अत्यन्त लाभदायक है वह है ईसबगोल तथा इसकी भूसी। अगर बेल का फल या मुरब्बा न मिले तो ईसबगोल देना चाहिए। थोड़े से दही में अथवा पानी में 10-12 ग्राम ईसबगोल या इसकी भूसी मिलाकर चम्मच से तुरन्त खा लें। यह पदार्थ आंतों में जाकर फूलता है, जिससे पतला मल गाढ़ा होकर निकलता है तथा यह आंतों की जलन और

बेचैनी को कम करके उन्हें शान्ति प्रदान करता है। यह पदार्थ तीन-चार दिन तक रोजाना सुबह-शाम दो बार देते रहें। ईसबगोल की भूसी का सेवन बराबर कराते रहें बेशक अन्य देसी या डाक्टरी दवाएं उसे दी जाती रहें। अगर पेचिश का आक्रमण हल्का ही होता है तो अक्सर वह इसी दवा से ठीक हो जाता है।

जहां तक औषधियों का सम्बन्ध है यह स्मरण रखना चाहिए कि पेचिश की चिकित्सा काफी जटिल है। यदि पेचिश बैसिलरी है तो कम-से-कम तीन जातियों के बैक्टीरिया के कारण हो सकती है और इनमें एक पेचीदगी यह है कि एक जाति के बैक्टीरिया यदि एन्टीबायोटिक्स से मर जाते हैं तो दूसरी जाति पर एन्टीबायोटिक्स का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वे सल्फा वर्ग की औषधियों से मरते हैं। अमीबा न एन्टीबायोटिक्स से मरते हैं और न सल्फा औषधियों से। इन्हें मारने के लिए एक विशेष वर्ग की औषधियां प्रयोग की जाती हैं। इन्हें हम सुविधा के लिए अमीबानाशी औषधियां कह सकते हैं।

कई बार रोगी में बैक्टीरिया और अमीबा दोनों ही आक्रमण कर देते हैं और इस स्थिति में औषधि का चुनाव और भी कठिन हो जाता है।

पेचिश की चिकित्सा का सिद्धांत यह होना चाहिए कि रोगी के मल की जांच करके दोषी सूक्ष्म जीव का पता लगाया जाये और उसे नष्ट करने में जो औषधि सबसे अधिक सक्षम हो वही रोगी को सेवन कराई जाय। चूंकि मल परीक्षण सदैव संभव नहीं होता अतः यह मानकर चिकित्सा की जाती है कि रोगी को बैसिलरी पेचिश है और साधारणतः अधिकांश रोगियों को यही होती भी है।

बहुत से डाक्टरों की राय है कि पेचिश की चिकित्सा में रोगी को सबसे पहले एन्टीबायोटिक औषधियां दी जानी चाहिए क्योंकि इनका प्रभाव जीवाणुओं पर बहुत शीघ्रता से होता है। इस उद्देश्य के लिए आजकल क्लोरमफेनिकोल तथा स्ट्रेप्टोमाइसीन दोनों बराबर मात्रा में मिलाकर मिश्रण बनाए गए हैं जिनमें 'क्लोरोस्ट्रेप' तथा 'एन्टेरोस्ट्रेप' दो प्रसिद्ध नाम हैं। इनमें से किसी भी दवा के दो-दो कैप्सूल छः-छः घण्टे बाद दो तीन दिन तक सेवन कराए जाते हैं। लाभ हो जाने के बाद भी एहतियात के तौर पर दो-तीन दिन और सेवन कराते रहें।

आधुनिक चिकित्सा में बेसिलरी पेचिश तथा अन्य प्रकार के जीवाणुओं के कारण उत्पन्न पेचिश तथा दस्तों में फूराजोलिडोन नामक औषधि को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है। यह कई व्यापारिक नामों से बाजार में मिलती है जिनमें

एसकेइफ (Eskayef) कम्पनी द्वारा निर्मित 'फ्यूरोक्सोन' बहुत प्रसिद्ध है। इसकी 100 मिग्रा० की एक-एक टेब्लेट दिन में चार बार सेवन कराई जाती है। फ्यूराजोलिडोन औषधि का सेवन करने पर रोगी को पेशाब गहरे पीले रंग का आता है यह बात उसे पहले ही बता देनी चाहिए ताकि वह व्यर्थ में भ्रम न पड़े।

इस बात की बड़ी सावधानी रखनी है कि यदि रोगी को दस्त अधिक हुए हैं तो इनके साथ बहुत तरल निकल जाने के कारण रोगी में निर्जलीकरण न होने पावे इसलिए उसे बराबर पुनः आर्द्रीकरण पेय (देखिए 'अतिसार') या सादा पानी या नींबू की शिकंजवी बराबर पिलाते रहें।

अगर रोगी के पेट में मरोड़ ज्यादा हो तो एक कपड़े को गर्म पानी में डुबोकर निचोड़कर इससे पेट को सेंकने से आराम होता है। यदि इससे लाभ न हो तो सैन्डोज कम्पनी की बैलाडीनल-इन (Balladenal-In) की ½ से 1 टेब्लेट दिन में तीन-चार बार देना चाहिए अथवा बैलाडोना मदर टिंक्चर की 3-4 बूंद थोड़े पानी में मिलाकर दिन में तीन-चार बार पिलाना चाहिए।

यदि उपरोक्त औषधियों से लाभ न हो रहा हो तो इस बात की संभावना है कि रोगी को अमीबा के कारण पेचिश हो सकती है। हालांकि उपरोक्त औषधियां अमीबा को भी मारती हैं परन्तु कई बार ये उन तक नहीं पहुंच पातीं। इस दशा में मल का लेबोरेट्री परीक्षण बड़ा जरूरी हो जाता है। अमीबा को मारने के लिए सर्वश्रेष्ठ औषधि ऐमेटीन है जिसके एक-दो इंजेक्शनों से ही एकदम लाभ होने लगता है। परन्तु यह औषधि कुछ ज्यादा विषाक्त प्रभाव रखती है और बहुत अनुभवी डाक्टर ही इसे प्रयोग करा सकता है इसलिए आजकल अन्य अमीबा-नाशक औषधियों का प्रयोग होने लगा है जिनमें मेट्रोनिडाजोल बहुत प्रसिद्ध है जो 'फ्लेजिल' तथा 'मेट्रोजिल' आदि व्यापारिक नामों से मिलती है। इसकी टिकिया 200 मिलीग्राम की होती है। इसकी दो-दो टिकियां दिन में तीन बार आठ-दस तक देने से अमीबिक पेचिश समाप्त हो जाती है।

नोट—कुछ लोगों की आंतों में अमीबा रहते हैं परन्तु ये लोग बीमार नहीं पड़ते। कुछ लोगों में अमीबा के कारण अक्सर दस्त होते रहते हैं जो दो-चार दिन रहते हैं फिर अपने आप ही ठीक हो जाते हैं। कई बार कमजोर आदमियों में अमीबा गम्भीर आक्रमण करके आंतों से उनके यकृत (लिवर) में पहुंच कर वहां पीप उत्पन्न कर देते हैं।

रोगी को खाने के लिए केवल मठा या आधा मठा और आधा दूध मिलाकर देना चाहिए। जब दस्त में आंव न गिरे तब रोगी को थोड़ा साबूदाना दिया जा सकता है और तब धीरे-धीरे उसे जरा-सी मूंग की दाल की पतली खिचड़ी, दाल का जूस आदि दिया जा सकता है। ठोस भोजन उसे बहुत दिनों बाद देना चाहिए। इस रोग में आंतों के भीतर घाव हो जाता है। इसलिए बहुत दिनों तक भोजन संभालकर करना चाहिए।

स्वास्थ्य की रक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिए। उसे समय से भोजन मिलना चाहिए ऐसा न हो कि उपवास करने से रोगी बहुत कमजोर हो जाए। उसके ओढ़ने-बिछाने पर भी ध्यान रखना चाहिए जिससे ठण्ड न लगे। दूसरे स्थान में जाने से हवा पानी बदलने के कारण अक्सर बहुत लाभ होता है।

मलेरिया

मलेरिया या जाड़ा बुखार भी हर साल लाखों लोगों का स्वास्थ्य चौपट कर जाता है। हमारे देश में मलेरिया का आक्रमण एवं प्रकोप आमतौर पर जुलाई से नवम्बर तक वर्षा ऋतु में होता है। मच्छरों की एक विशेष जाति—एनोफिलीज, की मादा के काटने से मलेरिया उत्पन्न होता है।

मलेरिया किस प्रकार फैलता है यह जानना भी आवश्यक है। जब एनोफिलीज मादा मच्छर मलेरिया के रोगी को काटती है तो अपनी सूंड से उसका रक्त चूसती है। इस रक्त में मलेरिया के पैरासाइट (जीवाणु) होते हैं। ये जीवाणु मच्छर के शरीर में बढ़ते रहते हैं। जब यह मच्छर किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटती है तो उसके मुंह की लार के साथ ये पैरासाइट उस व्यक्ति के शरीर में पहुंच कर उसे रोगी बना देते हैं।

मच्छर जो पैरासाइट मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट करता है उन्हें प्लाज्मोडियम कहा जाता है। ये प्लाज्मोडियम तीन जातियों में से किसी एक जाति के हो सकते हैं और इनकी जाति के अनुसार तिजारी या चौथिया बुखार बन जाता है। मच्छर के काटने से शरीर में प्रविष्ट होकर ये पैरासाइट मनुष्य के यकृत में पहुंच जाते हैं और वहां अपनी संख्या बढ़ाते रहते हैं। इसके पश्चात ये लाल रक्त कोशिकाओं पर धावा बोल देते हैं। इनमें कुछ घण्टे रहने के पश्चात जब इसकी संख्या काफी

बढ़ जाती है तो रक्त कोशिकाएं फट जाती हैं और भारी संख्या में ये पैरासाइट रक्त के प्लाज़्मा में प्रविष्ट हो जाते हैं। जिस समय ये रक्त प्लाज्मा में प्रविष्ट होते हैं उसी समय रोगी को जाड़ा देकर बुखार चढ़ता है।

बुखार चढ़ने पर रोगी को तेज जाड़ा लगता है और वह जाड़े के कारण कांपने लगता है। कंपकपी इतने जोर की होती है कि खाट भी हिलने लगती है। दांत भी किटकिटाने लगते हैं, कितने ही लिहाफ ओढ़ा दिए जाएं जाड़ा कम नहीं होता। यह अवस्था 15 मिनट से लेकर एक घण्टे तक रह सकती है। इसके बाद रोगी को ज्वर चढ़ने लगता है, चेहरा और आंखें लाल हो जाती हैं, नाड़ी की गति भी तेज हो जाती है। बुखार 104-105 डिग्री तक हो जाता हैं। यह हालत 3-4 घण्टे तक रह सकती है।

अन्त में रोगी को पसीना आने लगता है और इसके साथ ही बुखार उतरना शुरू हो जाता है। पसीना पहले माथे पर आता है फिर सारे शरीर से पानी की तरह बहने लगता है। पीड़ा और बेचैनी समाप्त हो जाती है जिससे रोगी को बड़ी शान्ति मिलती है तथा वह अपने को स्वस्थ और हल्का-फुल्का महसूस करने लगता है। यह इस ज्वर की विशेषता है।

मच्छर द्वारा शरीर में प्रविष्ट किए गए पैरासाइट की जाति के अनुसार मलेरिया ज्वर हर दूसरे या तीसरे दिन आता है तथा हर बार ज्वर चढ़ने व उतरने का क्रम यही रहता है। परन्तु प्रारम्भ में ज्वर का आक्रमण रोजाना भी हो सकता है। ऐसा भी देखा गया है कि छोटे बच्चों में तथा उन लोगों में जिन्हें पहले मलेरिया हो चुका है ज्वर का चढ़ना और उतरना उपरोक्त क्रम के अनुसार नहीं होता। इस कारण से जिन लोगों में वर्षा ऋतु में कई दिन तक ज्वर रहे और यह समझ में न आ रहा हो कि ज्वर किस प्रकार का है तो रोगी के रक्त की परीक्षा करवा कर निश्चय कर लेना चाहिए कि उसे मलेरिया तो नहीं है।

यदि मलेरिया के किसी रोगी को कभी-कभी मिरगी जैसे दौरे पड़ने लगें अथवा मेनिनजाइटिस रोग के अन्य लक्षण जैसे कि गर्दन में अकड़न, अधिक उल्टियां आदि हों तो सम्भावना यह है कि मलेरिया के पैरासाइट उसके मस्तिष्क में भी पहुंच गए हैं। ऐसे रोगी को तुरन्त किसी अच्छे डाक्टर के पास ले जाना चाहिए। यह बहुत खतरनाक अवस्था है।

रोकथाम—मच्छरों के काटने से बचने के लिए जहां तक संभव हो मच्छरदानी लगाकर सोना चाहिए। सोते समय शरीर पर सरसों का तेल चुपड़ लेने से भी मच्छर कम काटते हैं। मच्छर ऐसे स्थानों पर अण्डे देते हैं जहां पानी रुका हुआ रहे जैसे कि तालाब या गढ़े या घरों में छत पर पड़े टूटे-फूटे बर्तन जिनमें बरसात में पानी भर सकता है। तालाबों के किनारे-किनारे तनिक-सा मिट्टी का तेल पानी के ऊपर छिड़क देने से वहां मच्छर पैदा ही नहीं होंगे।

मलेरिया से बचाव के लिए आजकल कई प्रभावशाली औषधियां उपलब्ध हैं जिनमें सबसे अधिक सुरक्षित और सरलता से उपलब्ध होने वाली क्लोरोक्वीन है जो रेसोचिन (Resochin) तथा 'एल्लोक्लोर' व्यापारिक नामों से मिलती है। इसकी 250 मिलीग्राम वजन की टेब्लेट होती है। सप्ताह में केवल एक दिन इसकी दो टेब्लेट खाते रहने से मलेरिया का आक्रमण नहीं होता हैं।

चिकित्सा—मलेरिया की चिकित्सा के लिए कई औषधियां प्रयोग होती हैं परन्तु आजकल उपरोक्त औषधि क्लोरोक्वीन का ही प्रयोग अधिक होता है। सेवन विधि इस प्रकार है—

जवान रोगी को पहले दिन थोड़ा खाना खिलाने के बाद एक ही बार में इसकी चार टेब्लेट पानी से खिला दी जाती हैं। इसके छः घण्टे बाद दवा की दो टेब्लेट एक साथ खिला दें। दूसरे दिन हल्का भोजन करने के बाद एक ही बार में दो टेब्लेट खिला दें फिर तीसरे दिन इसी प्रकार दो टेब्लेट एक ही बार खिला दें। इस प्रकार तीन दिन में कुल दस टेब्लेट खिला देने से मलेरिया से मुक्ति मिल जाती है। वैसे एक बार में चार टेब्लेट खिला देने से भी मलेरिया चला जाता है।

कनफेड़, कनसुआ

यह रोग अधिकतर बच्चों को होता है। इसका कारण एक विषाणु (वायरस) है जो लार (थूक) उत्पन्न करने वाली ग्रन्थियों पर आक्रमण करता है। रोगी बच्चे का जूठा पानी पीने या उसके थूक के छींटे मुंह पर पड़ जाने से विषाणु दूसरे बच्चों में पहुंचकर उन्हें भी रोगी बना देते हैं। यह रोग खतरनाक नहीं होता रोगी 8-10 दिन में स्वयं ठीक हो जाता है।

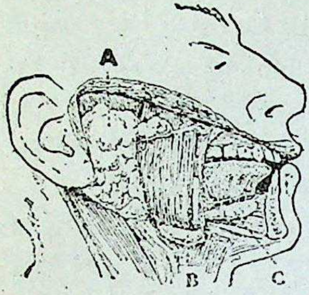

A, B, C ये तीनों लार उत्पन्न करने वाली ग्रन्थियां हैं। कान के पास लार उत्पादक ग्रन्थि A (पैरोटिड ग्रन्थि) पर वायरसों का आक्रमण हो जाने से बच्चों को कनफेड रोग हो जाता है।

लक्षण—इस रोग के पहले लक्षण यह हैं कि गर्दन की एक करवट में सूजन और सख्ती आ जाती है। शीघ्र ही एक तरफ के जबड़े के पीछे वाली लार उत्पादक ग्रन्थि सूज जाती है इसमें पीड़ा होती है तथा ग्रन्थि चार या पांच दिन तक आकार में बढ़ती ही जाती है। कभी-कभी यह इतनी बढ़ जाती है कि बच्चे को मुंह खोलने में भी कठिनाई होने लगती है। चौथे या पांचवें दिन से सूजन घटने लगती है और 8-9 दिन में सूजन बिल्कुल समाप्त हो जाती है। इस समय दूसरे तरफ के जबड़े की ग्रन्थि सूजने लगती है। परन्तु यह जरूरी नहीं है कि दूसरी तरफ की ग्रन्थि भी सूज जाए। प्राय: एक ही ओर की ग्रन्थि में सूजन आती है। अगर आक्रमण तेज है तो बच्चों को बुखार हो जाता है और गहरे रंग का पेशाब आने लगता है। अगर लड़का 12 वर्ष से अधिक आयु का है तो उसके वृषणों (Testicles या फोते) में सूजन आकर पीड़ा हो सकती है।

चिकित्सा—यदि रोग का आक्रमण सामान्य है तो किसी उपचार की जरूरत नहीं पड़ती। रोगी को पूरी तरह विश्राम करना चाहिए और उसके चेहरे व गर्दन को कपड़े से ढककर रखना चाहिए ताकि ठंडी हवा न लगे। खाने के लिए केवल पतला हलुआ या खूब पतली खिचड़ी देना चाहिए जिससे रोगी को चबाने का प्रयत्न न करना पड़े। कोई भी खट्टी चीज खाने को नहीं देना चाहिए, इससे रोगी को कष्ट बढ़ सकता है।

यदि रोगी दर्द के कारण बेचैन हो तो उसे ऐस्प्रिन या पैरासीटामोल की दो टेब्लेट ताजा पानी से दे दिया करें। सूजी हुई जगह पर गर्म कपड़े से सेंक करें।

यदि लड़के के वृषणों में सूजन आ गई है तो अण्डकोषों के नीचे मुलायम कपड़ा रख कर हल्का-सा लंगोट बांध देना चाहिए। पेडू में दर्द होने पर गर्म रुई से सेंकना चाहिए। यदि वृषण ज्यादा सूज जाएं और उनमें पीड़ा ज्यादा हो तो तुरन्त किसी सरकारी हस्पताल में या किसी बड़े डाक्टर से वृषणों की सूजन घटाने की दवा दिलवानी चाहिए। इस ओर से लापरवाही बरतने से इनमें स्थाई रूप से खराबी आ जाती है जिससे वह बच्चा आगे चलकर सन्तान उत्पन्न करने योग्य नहीं रहता।

पेट के कृमि

भारत में चार प्रकार के ऐसे कीड़े पाये जाते हैं जो अन्तड़ियों में रह कर आदमियों को बीमार कर देते हैं। इनके नाम हैं—थ्रेड-वार्म (चुनचुने), हुक वार्म, राउंड-वार्म (पेट के केंचुए), तथा टेप-वार्म (पटारा)। ये सभी कीड़े अन्तड़ियों में रहते हैं और आदमी का भोजन और उसका खून चूसते रहते हैं। ये कीड़े मनुष्य को बहुत हानि पहुंचाते हैं। जिस व्यक्ति के अन्दर ये रहते हैं, उसे अपने भोजन का लाभ नहीं उठाने देते।

थ्रैड-वार्म या पिन वार्म (Enterobius)

ये कीड़े सफेद रंग के, आधा इंच तक लम्बे और धागे की तरह पतले सफेद रंग के होते हैं, इन्हें 'चुरने कृमि' भी कहते हैं। ये टांगों के बीच में और गुदा के चारों ओर बड़ी खुजली पैदा करते हैं, जिसके कारण बहुत से बच्चे सो नहीं पाते इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य पर और कोई विशेष हानिकारक प्रभाव इन कीड़ों से नहीं होता। रात के समय मादा कीड़ा अन्तड़ियों में से बाहर निकल कर गुदा के पास अण्डे देती है। इन अण्डों की संख्या 10,000 तक होती है। अण्डे देने की जगह, गुदा के आस-पास, बड़ी खुजली होती है। बच्चा वहां खुजलाने लगता है। अण्डे बच्चे के नाखूनों में घुस जाते हैं। बच्चा यदि बिना अच्छी तरह हाथ धोये खाना खा लेता है तो अण्डे खाने के साथ उसके मुंह और अन्तड़ियों में चले जाते हैं। कुछ समय के बाद अन्तड़ियों में अण्डों से कीड़े निकल आते हैं। यदि अंडे किसी बालक के पेट में जाने से रोके जा सकें तो यह रोग होने से रुक सकता है।

रोकथाम के लिए बच्चों के नाखून काट कर छोटे रखें, टट्टी करने के बाद बच्चे की गुदा को और हाथों को अच्छी तरह साफ कर दें तथा बच्चे को पाजामा पहनाएं ताकि वह गुदा को खुजाए नहीं। रात्रि के समय वैसलीन या सरसों का तेल गुदा पर चुपड़ देने से खुजली कम उठती है।

चिकित्सा—चुरने कृमियों को मारने के लिए पिपराजीन सबसे सुरक्षित औषधि मानी जाती है जो बहुत जमाने से प्रयोग हो रही है। भारत में यह एन्टीपार (Antepar) नाम से शर्बत व टेब्लेट के रूप में मिलती है। 2 से 5 वर्ष तक की आयु के बच्चों को प्रातःकाल एक चाय का चम्मच यह शर्बत अथवा $1\frac{1}{2}$ टेब्लेट एक सप्ताह तक सेवन कराएं। रोजाना केवल एक खूराक दी जाती है।

अंकुश कृमि (हुक वार्म)

ये कीड़े लगभग आधा इंच लम्बे और लाल रंग के होते हैं। इन कीड़ों के मुंह हुक के समान होते हैं, जिनसे ये मनुष्य की अन्तड़ियों की दीवारों से लटके रहते हैं और अन्तड़ियों में से उसका खून चूस-चूस कर जीवित रहते हैं। यदि कोई व्यक्ति ऐसी धरती पर नंगे पांव फिरे जिस पर इस कीड़े के लार्वा (कीड़े का बच्चा) मौजूद हों तो ये लार्वा उसके तलुओं के फटावों के अन्दर घुस जाते हैं। फिर वे खून की नालियों में पहुंच जाते हैं और वहां से अपने अन्तिम निवास स्थान अर्थात अन्तड़ियों में जा पहुंचते हैं। वहां पहुंचने तक लार्वा पूरे कीड़े बन जाते हैं।

जब तक किसी व्यक्ति की आंतों में इन कृमियों की संख्या थोड़ी-सी ही रहती है तब तक उसे पता ही नहीं चलता कि वह इन कीड़ों का रोगी है। परन्तु जैसे-जैसे कीड़ों की संख्या बढ़ती जाती है त्यों-त्यों उसका खून अधिक-से-अधिक चूसा जाता है जिससे उसका शरीर खून की कमी के कारण पीला दिखाई देने लगता है। उसकी कमजोरी बढ़ती चली जाती है।

रोगी की अवस्था अधिक बिगड़ने पर उसकी आंखों के नीचे तथा पांवों और टखनों पर थोड़ी सूजन आ जाती है। उसे सांस लेने में भी कठिनाई होने लगती है। जिन बच्चों के पेट में ये कीड़े होते हैं वे अच्छी तरह नहीं बढ़ते। बहुत से बच्चों के पेट बहुत बढ़े हुए होते हैं। पेट बढ़ने के कारणों में से एक कारण ये कीड़े भी होते हैं। ये कीड़े ही कुछ लोगों में सुस्ती और थकान पैदा करते हैं।

रोकथाम—छोटे बच्चों के टट्टी बैठने के कारण घरों के आस-पास की भूमि प्रायः इन कीड़ों से संक्रमित होती है। इसे रोकने के लिए उचित पाखानों का बनाना और उनका ठीक प्रयोग करने में बच्चों को प्रशिक्षण देना लाभदायक होगा। बच्चों को नंगे पैरों न खेलने दिया जाये।

चिकित्सा—मेबेन्डाजोल या ट्राईक्लोरइथाइलीन सेवन कराने से ये कीड़े मल में निकल जाते हैं। कीड़ों के उपचार के बाद अरक्तता दूर करने के लिए रोगी को ऐसा भोजन लम्बे समय तक देते रहना चाहिए जिसमें लोहा प्रचुर मात्रा में होता है। जरूरत हो तो आयरन टेब्लेट्स भी सेवन कराना चाहिए।

गोल कृमि या राउण्ड वार्म (Ascaris)

ये धरती पर चलने वाले केंचुओं (Earth Worms) जैसे आठ-दस इंच तक लम्बे और गुलाबी या सफेद रंग के होते हैं इसलिए इन्हें आम बोलचाल में केंचुए भी कहा जाता है। इनके अण्डे सब्जियों एवं फलों द्वारा हमारे पेट में पहुंच जाते हैं और इनमें से लार्वे निकल आते हैं। लार्वे आंतों की दीवारों में घुसकर, उनमें छेद करके खून की नलियों में पहुंच जाते हैं। उन नलियों के मार्ग से होकर लार्वे अन्त में, हुकवार्म की ही भांति, पुनः अन्तड़ियों में जा पहुंचते हैं। बच्चों में ही नहीं बल्कि बड़ी आयु के कुछ लोगों में भी कई बार ये कीड़े मिलते हैं।

रोग के चिन्ह—जिन व्यक्तियों में ये कीड़े होते हैं वे कई प्रकार की गड़बड़ की शिकायत करते हैं। कीड़े उनके पाखाने में भी निकल सकते हैं : और मुंह तथा नाक के द्वारा भी। इस रोग के रोगी की अन्य शिकायतें ये होती हैं—ज्वर, खांसी तथा पेट में दर्द। बच्चे आमतौर पर चिड़चिड़े हो जाते हैं और उन्हें बहुत जल्दी क्रोध आने लगता है। वे कई बार मैली चीजें—विशेष कर मिट्टी—खाने लगते हैं। यदि अन्तड़ियों में बहुत से कीड़े हों (कई बार तो ये सैकड़ों की संख्या में पाये जाते हैं) तो पेट के विभिन्न भागों पर सख्त गांठें दिखाई देती हैं।

रोकथाम—बच्चों को साफ रहने की आदत डाली जाये। भोजन करने से पहले अपने हाथ अच्छी तरह धो लिया करें। भोजन को मक्खियों से बचा कर रखें।

चिकित्सा—प्रायः पिपराजीन की एक ही खूराक से केंचुओं से मुक्ति मिल जाती है। मेबेन्डाजोल भी दी जा सकती है।

फीता कृमि या कददू दाने (Tape worm)

इस कीड़े का रंग सफेद होता है। इसकी लम्बाई फीते की तरह चार या पांच फुट तक की होती है। इस कीड़े में बहुत से टुकड़े जुड़े हुए होते हैं। इन कीड़ों की गर्दन के निकट वाले भाग छोटे होते हैं और पूछ वाले भाग बड़े। ये बड़े टुकड़े कीड़े से समय-समय पर टूटकर अलग होते रहते हैं और पाखाने के द्वारा ब्राहर आते रहते हैं। ये टुकड़े कद्दू के बीज जैसे दिखाई देते हैं। ऐसे प्रत्येक टुकड़े के अन्दर बहुत से अण्डे होते हैं। यदि कोई पशु या सुअर ऐसे मैले को खा ले जिसके अन्दर ये टुकड़े हों, तो उन टुकड़ों के अण्डों में से लार्वा निकलकर उस पशु की पेशियों में रहने लगते हैं। फिर जब कोई मनुष्य ऐसे पशु का मांस खा लेता है जिसके अन्दर ये कीड़े हों (यदि मांस को इतनी देर तक न पकाया जाए कि ये लार्वा पूरी तरह मर जाएं) तो लार्वा उस मनुष्य की अन्तड़ी में बढ़कर पूरा टेप-वर्म बन जाता है। इस कीड़े के सिर में बहुत से पंजे से बने हुए होते हैं जिनकी सहायता से यह अन्तड़ियों की दीवार से बुरी तरह चिपट जाता है और वहां रहकर मनुष्य का भोजन स्वयं खाता रहता है।

रोग के लक्षण—इस रोग के रोगी के पेट में दर्द रहता है और वह ऐसा अनुभव करता रहता है जैसे वह अस्वस्थ हो। उसका वजन घट जाता है और उसकी टट्टी में कभी-कभी कद्दू के बीज की आकृति के सफेद रंग के टुकड़े निकलते हैं।

ये कीड़े गाय या सुअर का मांस लम्बे समय तक खाते रहने वाले मनुष्यों के पेट में होते हैं अत: हिन्दू लोग इन कीड़ों से प्राय: मुक्त रहते हैं।

चिकित्सा—इन कृमियों को मारना आसान नहीं है परन्तु आजकल इनके विनाश के लिए एक खास औषधि निकल आई है जिसमें निक्लोसामाइड नामक रसायन होती है। यह औषधि योमेसान तथा निकलोसान (Niclosan) व्यापारिक नामों से मिलती है। इसकी टेब्लेट 500 मिलिग्राम की होती है। दो से आठ वर्ष आयु तक के बच्चों को सुबह बिना कुछ खाए एक टेब्लेट चबाकर खाने को दी जाती है। उसके एक घण्टे बाद एक टेब्लेट और दी जाती है। इस औषधि का प्रभाव चमत्कार की तरह होता है। सेवन कराने के दो घण्टे के अन्दर ही समूचा कृमि सिर सहित मल में निकल जाता है।

सब प्रकार के पेट के कृमियों की चिकित्सा

अब तक इन कीड़ों को मारने के लिए इनकी जाति के अनुसार विभिन्न औषधियों का प्रयोग करना पड़ता था, इन दवाओं का मूल्य भी अधिक होता था तथा इनमें कुछ दवाएं विषैली होने के कारण केवल डाक्टर की निगरानी में ही दी जा सकती थीं।

नई खोजों से पता चला है कि मेबेन्डाजोल (Mebendazole) नामक रसायन मनुष्य के पेट में पाए जाने वाले लगभग समस्त जातियों के कीड़ों को मार देती है। यह अत्यन्त ही सुरक्षित औषधि समझी जाती है और बिना डाक्टर की सलाह के प्रयोग की जा सकती है।

इस रसायन को टेब्लेट के रूप में कई दवाएं वनाने वाली कम्पनियां अपने-अपने व्यापारिक नाम से वेच रही हैं। कुछ नाम ये हैं:

वार्मिन (Wormin) टेब्लेटस	कैडिला कम्पनी
पेन्टेल्मिन (Pantelmin) टेब्लेट	एथनोर लिमि०
मेवेक्स (Mabex) टेब्लेट	सिपला कम्पनी

इनमें से जो भी मिले ले लें। प्रत्येक कम्पनी की छः टेब्लेट का पैकिंग होता है और प्रत्येक टेब्लेट में 100 मिलीग्राम मेवेन्डाजोल होती है। एक टेब्लेट सुबह और एक शाम को पानी के साथ निगल लें या चबाकर खालें। इन छः टेब्लेट अर्थात् तीन दिन के कोर्स से समस्त तरह के कीड़े मर जाते हैं। बच्चों और बड़ों दोनों की खुराक बराबर है। इस दवा के सेवन के पूर्व दस्तावर दवा देने या खाने का नागा करने की कोई जरूरत नहीं है।

नोट—(1) इस नई दवा का परीक्षण दो साल से कम आयु के बच्चों पर गहराई से नहीं किया गया है अतः इनको यह दवा न दें। (2) यह दवा देने पर अगर पेट में कीड़े वहुत ज्यादा हों तो किसी-किसी रोगी के पेट में दर्द होने लगता है और कीड़े निकलने के कारण दस्त लग जाते है। परन्तु ये मामूली शिकायतें होती हैं। (3) गर्भवती स्त्रियों को यह औषधि न दी जाये।

३. पेट के रोग

कब्ज (कोष्ठबद्धता)

साधारणतया विष्ठा त्याग प्रतिदिन एक या दो बार होना चाहिए। यदि वह 24 घण्टे से देर पर हो तो इस अवस्था को कब्ज कहते हैं। सभ्यता के साथ-साथ कोष्ठबद्धता भी बढ़ती जाती है। इसका कारण खान-पान और रहने की प्रणाली है। शाकाहारी प्रायः इस व्याधि से मुक्त रहते हैं। मांसाहारी प्रायः इस रोग में जकड़े रहते हैं। यह बहुत-ही साधारण अनुमान की बात है कि गाय, घोड़े जो घास ही खाते हैं दिन में कई बार पाखाना करते हैं और पाखाने की मात्रा भी बहुत होती है। कुत्ते-बिल्ली जो मांस खाते हैं बहुत देर पर पाखाना करते हैं और विष्ठा की मात्रा भी कम होती है। दोनों ही श्रेणी के जानवर कोष्ठबद्धता से पीड़ित नहीं होते। इसका कारण यही है कि जब कभी मल इनकी आंत के अन्तिम भाग में इकट्ठा हो जाता है, तो इन्हें पाखाना की हाजत होती है और ये पाखाना कर देते हैं। मनुष्य समाज में सभ्यता की वृद्धि के साथ-साथ पाखाना की हाजत को रोकने की आदत बढ़ती जाती है। परिणाम यह होता है कि कोष्ठबद्धता का रोग बढ़ता जाता है।

जब भोजन या पानी आमाशय (Stomach) में पहुंचता है तब थोड़ी देर बाद बड़ी आंत (Large intestine) में गति पैदा हो जाती है और पाखाने की हाजत होती है। प्रातःकाल बिछावन छोड़ते ही एक गिलास पानी पीने या चाय पीने पर यही गति पैदा होती है और इच्छा होती है कि पाखाना किया जाए। तम्बाकू या सिगरेट पीने से यह गति नहीं होती, किन्तु मनुष्य में जब पाखाना जाने से पूर्व तम्बाकू की आदत रहती है तब वह सोचता है कि ऐसा करने से पाखाना होता है। मस्तिष्क का प्रभाव पेट का बड़ा प्रबल होता है। यदि मस्तिष्क

में प्रचंड भय का संचार हो जाए तब प्रायः देखा जाता है कि मल-मूत्र का अकस्मात् त्याग हो जाता है। यदि बिछावन छोड़ते समय एक गिलास पानी पीकर शौच जाने की आदत डाल ली जाए तो मस्तिष्क इसको स्वीकार कर लेता है कि प्रातः काल जल पीने से पखाना होता है और यह धारणा ऐसी प्रबल हो जाती है कि समय पाकर नियमित रूप से इससे शौच की बान बंध जाती है।

सनाय की ढेंड़ियां। कब्ज के लिए श्रेष्ठ तथा सुरक्षित दवा।

भोजन के जो अंश पाचन क्रिया के बाद बच जाते हैं और जिनका रस बन कर शरीर में नहीं शोषित हो सकता वे आंत के अंतिम भाग में विष्ठा के रूप में एकत्रित हो जाते हैं और जब इसका परिमाण विशेष हो जाता है तब शौच की इच्छा होती है। जिन भोजन सामग्रियों में इन अवयवों का अभाव रहता है उनसे कोष्ठबद्धता होती है और जिनमें इनका आधिक्य होता है उनसे दस्त की बीमारी हो जाती है। दूध, मांस, मछली, अंडा और इनसे बनी हुई चीजों में विष्ठा पैदा करने वाले अवयवों की मात्रा कम होती है। हरे शाक और ताजे फलों में इनकी मात्रा अधिक होती है। अतएव कोष्ठबद्धता को दूर रखने का साधन यह भी है कि मनुष्य के भोजन में हरे शाक और फलों की मात्रा यथेष्ठ रहे। अनाज गल्लों में पूर्ण गेहूं का आटा (अर्थात् बिना चोकर निकला गेहूं का आटा), ढेकी का छांटा चावल और दालों में (विशेषकर छिलके सहित खाई जाने वाली मूंग आदि की दालों में) इनकी मात्रा यथोचित रहती है और इनसे कोष्ठबद्धता नहीं होने पाती।

बहुत कम पानी पीने से भी दस्त साफ नहीं होता अतः कब्ज के रोगियों को दिन में कई बार पानी पीना चाहिए।

थोड़े बहुत व्यायाम के बिना हमारी आंतें और पाचन तंत्र ठीक तरह काम नहीं करता जिससे कब्ज रहता है अतः इन रोगियों को प्रतिदिन व्यायाम करने का समय निकाल लेना चाहिए। व्यायाम करने से यकृत आंतों में अधिक मात्रा में पाचक रस भेजने लगता है।

दवाइयां—यदि उपरोक्त नियमों का पालन किया जाए तो कब्ज नहीं रहता। यदि फिर भी कब्ज हो तो औषधि खाने में कोई हर्ज नहीं है। नीचे इस रोग के कुछ सरल नुस्खे दिए जा रहे हैं।

० कुछ औषधियां ऐसी हैं जो पेट में, विशेषकर बड़ी आंत में प्रकोपन (Irritation) पैदा करके उसमें विशेष गति पैदा कर देती हैं; जैसे सनाय की पत्ती या ढेड़ी, अमलताश का गूदा, कैसकरा इत्यादि। यदि सनाय की छः ढेड़ियां आधा गिलास गरम पानी में तीन-चार घण्टे तक फुला दी जाएं और छानकर जल को सोते समय पी लिया जाए तो प्रातः काल पानी पीने के छः-सात घण्टे बाद एक-दो बार शौच हो जाता है। कब्ज दूर करने की यह एक अच्छी सुरक्षित दवा है।

० छोटी हरड़ जिसे काली हरड़ भी कहते हैं पंसारी के यहां से 100-150 ग्राम लेकर रख लें। इसको न भूनना है न कूटना है, जैसी पंसारी के यहां से ली है उसी रूप में इस्तेमाल करना है। इसको पानी से धोकर और कपड़े से साफ करके रख लें। एक हरड़ मुंह में डालकर चूसते रहें, लगभग एक घण्टे में घुल जाती है। दिन में 2-3 हरड़ चूस लिया करें। यह कब्ज और गैस के लिए सर्वोत्तम दवा है।

० रात्रि को सोते समय एक-दो कप गर्म दूध में 10 ग्राम ईसबगोल की भूसी मिलाकर पी जाएं। यह भूसी आंतों में जाकर फूलती है तथा मल को आगे धकेलती है जिससे कब्ज दूर हो जाता है।

० कुछ रोगियों को कब्ज इस प्रकार का होता है कि मल खुलकर नहीं आता, रोगी बहुत देर तक पखाने में बैठा रहता है। कांख-कांख कर परेशान हो जाता है। आंतों में गुड़-गुड़ की आवाज आती है, परन्तु मल बहुत थोड़ा निकलता है या नहीं आता। इन रोगियों को घीग्वार (ग्वारपाठा) का हरा छिलका उतार अन्दर के गूदे को सब्जी की तरह छौंककर शाक बना कर रोटी के साथ खाना चाहिए। यह उपचार एक महीना चलना चाहिए। इसके सेवन से आंतों की पेशियों में बल आता है, पित्त समुचित मात्रा में बनने लगता है और यकृत काम करने लगता है और कब्ज समाप्त हो जाता है। **(वैद्य सहचर)**

० कुछ लोग शिकायत करते हैं कि उनको टट्टी बहुत सख्त उतरती है। इन लोगों को रात्रि में एक बड़े गिलास भरकर गर्म दूध में 50-60 ग्राम (एक-सवा छटांक) देशी घी मिलाकर पी लेना चाहिए। गाय, भैंस का घी इस प्रकार पीने

से प्रायः चमत्कारी प्रभाव दिखाता है। यह घी अंग्रेजी दवा लीक्विड पैराफीन का काम करता है और स्वास्थ्यवर्धक तो है ही।

◦ अंग्रेजी दवाओं में आजकल दो औषधियां अधिक प्रसिद्ध हैं। इनमें एक है ग्लैक्सो कम्पनी की बनी ग्लैक्सेना (Glaxenna) जो वास्तव में सनाय की ढेंड़ी से बनती है और दूसरी है डयूकोलैक्स (Ducolax) जो बिस्कोडिल नामक औषधि का व्यापारिक नाम है। इनमें से जो भी औषधि मिल सके उसकी दो टिकियां रात्रि में सोते समय खा लेने से सुबह खुलकर टट्टी आ जाती है।

नोट—कब्ज के रोगियों को कभी-भी तेज दस्तावर दवाएं नहीं लेना चाहिए, ये आंतों को कमजोर करती हैं।

गैस रोग

गैस और कब्ज रोग दोनों ही भाई हैं अतः गैस के रोगी में कब्ज भी जरूरी होता है। कब्ज के सम्बन्ध में हम पीछे बता चुके हैं। जो सावधानियां और चिकित्सा कब्ज में बताई गई हैं वे ही गैस के लिए भी हैं।

हम जो भोजन करते हैं वह पहले आमाशय में जाता है और वहां से छोटी आंतों में। छोटी आंतें भोजन में उपस्थित पौष्टिक अंश चूस लेती हैं तथा जो व्यर्थ अंश या फुजला बचता है उसे बड़ी आंत में पहुंचा देती हैं। बड़ी आंत में एक विशेष प्रकार की लहरदार गति होती है जिसके कारण यह फुजला या मल धीरे-धीरे आगे बढ़ता जाता है और अन्त में गुदा के मार्ग से निकल जाता है। बड़ी आंत में अनेकों प्रकार के असंख्य जीवाणु रहते हैं। हमारे मल का लगभग एक-तिहाई भाग इन्हीं जीवाणुओं से मिलकर बनता है।

गैस रोग का सबसे ज्यादा सम्बन्ध बड़ी आंत से है। बड़ी आंत की रचना मोटे-तौर पर अंग्रेजी के उल्टे (∩) की तरह होती है। यह पेट में दाहिनी ओर नीचे की तरफ छोटी आंत के साथ मिली होती है और यहां से ऊपर की ओर उठकर यकृत तक जाती है। यह आंत का 'आरोही' भाग कहा जाता है। यहां से यह लगभग 90 अंश का कोण बनाती हुई तिल्ली की तरफ जाती है। यकृत के पास से जो भाग तिल्ली तक जाता है उसे 'अनुप्रस्थ आंत' कहते हैं। तिल्ली के पास से यह फिर 90 अंश का कोण बनाते हुए नीचे को आती है जिसे 'अवरोही' भाग कहा जाता

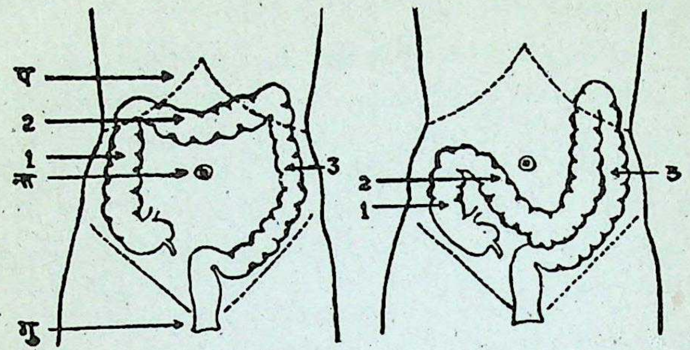

बाएं हाथ के चित्र में स्वस्थ व्यक्ति की बड़ी आंत अपनी सामान्य अवस्था में दिखाई गई है। दाहिने हाथ के चित्र में लटकी हुई बड़ी आंत दिखाई गई है जो गैस उत्पन्न करने का कारण बनती है 1. आंत का आरोही भाग 2. अनुप्रस्थ आंत 3. अवरोही भाग 4. अन्तिम पसली गु—गुदा ना—नाभि।

है। यह भाग नीचे जाकर मलाशय (Rectum) पर समाप्त होता है। इस प्रकार बड़ी आंत के ऊपरी हिस्सों में दो मोड़ होते हैं। जो व्यक्ति भाग-दौड़ और शारीरिक परिश्रम के कार्य नहीं करते और अधिकतर बैठे रहते हैं उनके पेट की मांस-पेशियां कमजोर पड़ जाने के कारण ढीली हो जाती हैं और आंतों को अपने स्थान पर रोक कर नहीं रख सकतीं। फलस्वरूप उनकी बड़ी आंत का अनुप्रस्थ भाग आगे को झुक जाता है जिससे इसके दोनों सिरों पर के कोण तंग हो जाते हैं अतः मल के आगे बढ़ने के कार्य में रुकावट पड़ती है। फल यह होता है कि मल एक जगह अधिक समय रुका रहने से इसमें फर्मेन्टेशन अर्थात् सढ़ांद नामक क्रिया होने लगती है जिसके कारण गैस उत्पन्न होने लगती है। यह गैस ऊपर चढ़ती है तो पेट में भारीपन, कलेजे पर बेचैनी और घबराहट आदि लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं जिनके कारण रोगी का किसी काम में मन नहीं लगता।

चिकित्सा—चूंकि कोई भी दवा आगे झुकी हुई आंत को नहीं ठीक कर सकती और न पेट की पेशियों को कोई दवा मजबूत बना सकती है अतः गैस का एकमात्र स्थाई इलाज पेट के स्पेशल व्यायाम हैं।

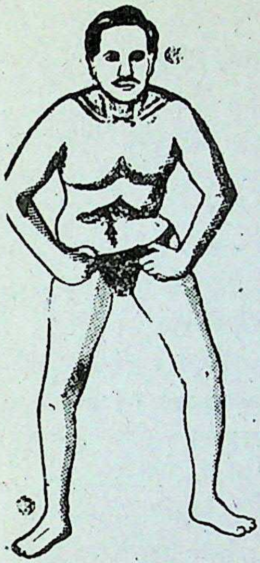

गैस रोग से मुक्ति दिलाने वाला अनोखा व्यायाम

यहां जो पेट का व्यायाम लिखा जा रहा है यह हजारों रोगियों को गैस की यंत्रणा से छुटकारा दिला चुका है। इस व्यायाम को कई महीनों तक करते रहने से पेट की मांस-पेशियां मजबूत बन जाती हैं, बड़ी आंत अपनी ठीक जगह पर आ जाती है जिससे गैस बननी बन्द हो जाती है और आंतों की क्रिया सुचारु रूप से होते रहने के कारण भोजन अच्छी तरह हज्म होने लगता है। यह व्यायाम सवेरे खाली पेट करना चाहिए।

दोनों पैरों को फैला कर खड़े हो जाइए। थोड़ा-सा आगे को झुकिए और हाथों को जंघाओं पर टिका लीजिए जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। अब सांस को पूरी तरह बाहर निकाल दीजिए तथा पेट को अन्दर को सिकोड़िए। मन ही मन 1 से लेकर 8 तक गिनती गिनने तक पेट को सिकोड़ रखिए। अब सांस लेकर पेट को ढीला छोड़ दीजिए और एक-दो मिनट रुक कर पुनः सांस बाहर निकाल कर पेट को भीतर सिकोड़िए। यह क्रिया कई बार कीजिए। योग शास्त्र में इस क्रिया को 'उड्डियान बंध' कहते हैं।

जब एक-दो महीने तक करते रहने पर इसका काफी अभ्यास हो जाए तो जांघों पर हाथ रखकर, सांस बाहर निकालकर जब पेट को सिकोड़ें तो पेट की पेशियों को पहले दाहिनी ओर फिर बांई ओर घुमाने का प्रयत्न करें। शेष क्रिया उपरोक्त ही है। कुछ ही दिन में इसका भी अभ्यास हो जायेगा। पेट की पेशियों को घुमाने की क्रिया को 'नौलि क्रिया' कहा जाता है। इसको रोजाना करते रहने वाले व्यक्ति की पेट की मांस-पेशियां मजबूत बनी रहती हैं उसकी थोंद नहीं निकलती और हाज्मा हमेशा अच्छा बना रहता है।

स्मरण रखना चाहिए कि इस व्यायाम से महीने-दो-महीने तक कोई खास फायदा नजर नहीं आएगा परन्तु इसके बाद ही रोगी को इस सरल व्यायाम के

चमत्कार दिखाई देने लगते हैं। सबसे पहला लाभ यह दिखाई देता है कि उसकी भूख बढ़ जाती है, खाया-पिया हज्म होने लगता है, कब्ज और गैस समाप्त हो जाती है और रोगी को अपने अन्दर नई स्फूर्ति मालूम पड़ने लगती है।

गैस के रोगियों को परामर्श

उपरोक्त व्यायाम के अतिरिक्त गैस के रोगियों को नीचे लिखे नियमों का पालन भी करना चाहिए—

(1) धूम्रपान और पान खाना बहुत कम कर दें।

(2) सोड़ा वाटर और चाय का सेवन बहुत कम करें।

(3) यदि दूध पीने से पेट में गुड़गुड़ होने लगती हो तो दूध न पिएं। स्मरण रखें कि वयस्क व्यक्ति को स्वस्थ रहने के लिए दूध का सेवन आवश्यक नहीं है।

4. हर बार थोड़ा-थोड़ा भोजन करें (पेट का चौथाई कोना खाली रहे) और भोजन के पश्चात् तुरन्त पानी न पिएं। आधे घण्टे पश्चात् पी सकते हैं। भोजन के साथ भी पानी न पिएं, प्यास लगे तो थोड़ा-सा पिएं। भोजन शीघ्रता से न करें बल्कि धीरे-धीरे चबाकर खाएं।

(5) प्याज, टमाटर, मटर और दालें कम मात्रा में खाएं।

(6) गैस द्वारा उत्पन्न बेचैनी को दूर करने के लिए एक श्रेष्ठ औषध चारकोल है। इसकी टेब्लेट्स केमिस्टों के यहां मिलती हैं। यह वास्तव में औषधि प्रयोग के लिए बनाया गया लकड़ी का कोयला होता है। इन्डोफार्मा कम्पनी अल्ट्रिन्डोन (Ultrindon) नाम से इसमें कुछ अन्य दवाएं मिलाकर इसकी टेब्लेट बनाती है। अन्य कम्पनियां सादा चारकोल की टेब्लेट्स भी बनाती हैं। दिन में तीन-चार बार चारकोल की दो-दो या तीन-तीन टेब्लेट्स चबाकर जरा-सा पानी पी लेना चाहिए। यह कोयला आंतों में उपस्थित गैसों को चूस लेता है और रोगी को बड़ा आराम महसूस होता है। इन टेब्लेटस को लम्बे समय तक प्रयोग कर सकते हैं क्योंकि इनसे कोई हानि नहीं होती। ये बहुत सस्ती होती हैं। गैस के रोगियों को भांति-भांति की मूल्यवान दवाओं पर रुपया फूंकने की बजाय इस सरल दवा को ही अपनाना चाहिए।

(7) इसके अतिरिक्त गैस के रोगियों को प्रतिदिन लगभग एक घण्टे तक कोई शारीरिक श्रम का ऐसा कार्य अवश्य करना चाहिए जिससे समस्त अंगों का व्यायाम हो जाए।

अजीर्ण या बदहज्मी

अजीर्ण, अपच या बदहज्मी वह रोग है जिसमें आहार ठीक तरह से पचता नहीं। इसका मुख्य लक्षण यह है कि पेट में भारीपन या पीड़ा होती है। साधारणत: यह अनुचित आहार या पाचक-संस्थान (आमाशय, अंतड़ी इत्यादि) के किसी रोग के कारण होता है। अधिक उम्र की अवस्था में अक्सर पेट की पीड़ा के अतिरिक्त मिचली या वमन भी होता है और स्वास्थ्य में भी गड़बड़ हो जाती है। वस्तुत: अजीर्ण कोई विशेष रोग नहीं है। यह केवल एक लक्षण है जो कई रोगों में दिखाई पड़ता है।

पेट की पीड़ा के अतिरिक्त अक्सर भूख भी मर जाती है, जीभ गन्दी रहती है और मुंह में बुरा स्वाद जान पड़ता है, अक्सर कब्ज भी रहता है, परन्तु इसके बदले कभी-कभी अतिसार की शिकायत हो सकती है।

आवश्यकता से अधिक खाने या शराब पीने, रात में देर करके खाने की आदत से स्थाई अजीर्ण उत्पन्न होता है। दो भोजनों के बीच में समय-समय पर थोड़ा-सा कुछ खा लेने की आदत भी बहुत बुरी है, इससे अक्सर अजीर्ण उत्पन्न हो जाता है। कभी देर में, कभी पहले भोजन करना भी बुरा है। जल्दी-जल्दी भोजन करना या भोजन करते समय पढ़ते रहना या अन्य किसी विचार में मग्न रहना भी हानिकारक है।

आमाशय के दोष—जब आमाशय की मांश पेशियां कमजोर हो जाती हैं तो आमाशय कुछ बड़ा हो जाता है और उसकी पचाने की शक्ति कम हो जाती है, ऐसी दशा में स्थाई अजीर्ण उत्पन्न होता है। थोड़ा ही भोजन करने के बाद पेट भारी मालूम होता है। वह व्यक्ति कुछ दिनों में दुबला हो जाता है क्योंकि काफी भोजन पच नहीं पाता।

कभी-कभी आमाशयिक रस (हाइड्रोक्लोरिक अम्ल) साधारण से भिन्न गुणों का बनता है। कैन्सर जैसे रोगों में यह रस आवश्यकता से कम बनता है, तो अम्लाल्पता (Hypochlorhydria) उत्पन्न होती है। अम्लाल्पता के कारण अक्सर अतिसार उत्पन्न होता है, भूख मिट जाती है, पेट भारी जान पड़ता है और मिचली आती है। आवेशात्मक गड़बड़ियों तथा मानसिक तनाव में ग्रस्त व्यक्तियों में आमाशयिक रस आवश्यकता से अधिक बनता है जिसे अम्लाधिक्य (Hyper-

chlorhydria) कहते हैं। इससे अक्सर पेट में पीड़ा होती है। कभी-कभी पीड़ा नहीं भी होती, केवल छाती की हड्डियों के नीचे जलन-सी जान पड़ती है। अक्सर खट्टे डकार भी आते हैं। यदि यह अम्लाधिक्य अधिक समय तक बना रहे तो पाचन तंत्र के किसी गम्भीर रोग जैसे कि आमाशय या ग्रहणी में जख्म (Ulcer) होने का संदेह करके किसी अच्छे चिकित्सक से परामर्श करना चाहिए।

अजीर्ण से बचने के उपाय—उचित और बंधे समय पर भोजन करना चाहिए। दांतों में कोई रोग हो तो उसकी दवा तुरन्त करनी चाहिए। भोजन को अच्छी तरह चबाना चाहिए और धीरे-धीरे खाना चाहिए। भोजन के पहले और पीछे कुछ समय तक आराम करना भी बहुत अच्छा है। इन रोगियों को प्रातः काल नियमित रूप से कुछ देर तक पेट को मजबूत बनाने वाले व्यायाम भी करना चाहिए।

चिकित्सा—यथासम्भव ऐसी चेष्टा करनी चाहिए कि बिना दवा के ही अजीर्ण अच्छा हो जाए। सरल और लघु मात्रा में भोजन करना चाहिए। भोजन में घी या तेल का प्रयोग बहुत कम कर देना चाहिए। अन्य वस्तुओं की मात्रा घटा कर दही की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। नमक भी कम खाया जाए। कभी-कभी उपवास करना भी अच्छा है। अक्सर इतने ही से अजीर्ण अच्छा हो जाता है। परन्तु यदि पीड़ा या बेचैनी अधिक हो तो निम्न औषधियों का प्रयोग किया जा सकता है।

यदि अम्लाधिक्य की शिकायत हो, खट्टे डकार आएं, कलेजा जलता-सा जान पड़े तो सोडियम बाइकारबोनेट (खाने का सोडा या मीठा सोडा) से आराम मिलता है। चाय के चम्मच से नापकर भरपूर सोडा एक गिलास ताजा पानी में घोलकर पीना चाहिए। इससे तुरन्त आराम मिलता है, क्योंकि इससे अम्लता कट जाती है। तो भी इसका प्रतिदिन सेवन अच्छा नहीं है, हां कभी-कभी सोडा खाने में कोई डर नहीं रहता।

○ फिलिप्स के 'मिल्क आफ़ मैगनेशिया' की 4-6 टेब्लेट चाबकर ऊपर से दो घूंट पानी पी लें। इससे भी कलेजे की जलन और खट्टी डकारें आने में तुरन्त लाभ होता है।

○ बदहज्मी के रोगियों के लिए एक बहुत सस्ती परन्तु चमत्कारी दवा **ब्रोउर्स यीस्ट** (Brewers yeast) है। डाक्टरी दवाएं बेचने वालों के यहां 'यीस्ट

टेब्लेट' नाम से इसकी टिकियां मिलती हैं। इसकी 1000 टिकियों का डिब्बा आजकल लगभग 25 रुपये का है। यह वही यीस्ट या खमीर है जिसको गन्ने के रस में डाल देने से उसमें खमीर उठकर सिरका और मदिरा बन जाती है। सुबह-शाम खाना खाने के बाद इसकी चार-पांच टेब्लेटस चबाकर पानी पी लिया जाता है। यह यीस्ट विटामिन 'B' का भंडार है और पाचन तन्त्र के लिए अद्भुत और अनुपम औषधि है। भूख का कम लगना, भोजन का ठीक तरह न पचना, कभी कब्ज कभी दस्त रहना आदि रोगों में अत्यन्त लाभदायक है। खाना हज्म करती है, भूख बढ़ाती है और स्वास्थ्य में वृद्धि करती है। ये टेब्लेटस एक-दो महीने तक खानी चाहिए। यह ऐसी दवा है जिससे किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचती।

० विटामिन बी-कम्प्लैक्स उदर रोगों में विशेष लाभदायक है। भारत सरकार की I D P L कम्पनी सीबैक्सिन (Cebexin) नाम से एक कैप्सूल बनाती है जिसमें विटामिन बी-काम्प्लैक्स, विटामिन-सी तथा अन्य विटामिन होते हैं। इसका एक कैप्सूल रोजाना एकाध महीना खाते रहने से अजीर्ण के रोगियों को बहुत लाभ होता है।

० आजकल कुछ ऐसी औषधियां भी बन गई हैं जिनमें वे एन्जाइम मौजूद होते हैं जो मनुष्य के आमाशय में होते हैं और भोजन को पचाते हैं। इनमें पार्क डेविस कम्पनी की टाका-डाइस्टेज (Taka-Diastase) बहुत प्रसिद्ध है। इसकी 2-3 टेब्लेट खाना खाते समय या तुरन्त बाद खा लेने से भोजन अच्छी तरह पचने लगता है। इसी प्रकार की भोजन हज्म करने वाली अन्य औषधियां हैं—रैलिस कम्पनी की डिजीप्लैक्स (Digeplex) नियोफार्मा कम्पनी की कम्बीजाइम (Combizyme) और यूनीकेम कम्पनी की यूनीऐन्जाइम (Unienzyme)। ये सब कमो-बेश एक जैसे गुणों वाली हैं।

० जिन लोगों को अक्सर पेट की गड़बड़ी की शिकायत रहती है उन्हें चाहिए कि अपनी देशी जड़ी-बूटियों से बनने वाले एकाध प्रकार के चूर्ण या गोलियां या चटनियां बना कर रख लें और जरूरत पड़ने पर इनका सेवन कर लिया करें। इस प्रकार की बहुत-सी औषधियां बनाने के सरल नुस्खे कविराज शिवगोविन्द त्रिपाठी एम० ए० आयुर्वेदाचार्य की लिखी पुस्तक **55 चमत्कारी जड़ी-बूटियां** में दिए गए हैं।

○ होम्योपैथी की औषधि नक्सवामिका हर प्रकार के कब्ज, गैस और अजीर्ण के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। कुछ रोगियों को तो यह चमत्कार की तरह ठीक कर देती है। पुराने अजीर्ण के रोगी सुबह उठते ही होम्योपैथी की **सल्फर-30** की एक खुराक तथा रात्रि में सोते समय **नक्सवामिका-30** की एक खुराक कुछ दिनों सेवन करते रहें तो पाचन सम्बन्धी समस्त विकार दूर हो जाते हैं। होम्योपैथी की अन्य औषधियां भी प्रयोग की जा सकती हैं।

पतले दस्त या अतिसार

बार-बार पतले दस्त होने को अतिसार, प्रवाहिका या पेटझरी भी कहते हैं क्योंकि दस्त साधारणतः बहुत पतला होता है।

अतिसार वस्तुतः कोई रोग नहीं है, यह केवल एक लक्षण है जो भिन्न-भिन्न कारणों से उत्पन्न हो सकता है। कभी-भी अतिसार को बन्द करने की दवा नहीं दी जाती, सर्वदा उस कारण को दूर करने की दवा दी जाती है जिससे अतिसार उत्पन्न हुआ है। इसलिए अतिसार की चिकित्सा में पहला काम यह है कि पता लगाया जाए कि इसका कारण क्या है।

यद्यपि अतिसार होने के अनेकों कारण होते हैं परन्तु सबसे प्रमुख कारण संक्रामक जीवाणुओं का शरीर में पहुंचना है। बैक्टीरिया तथा अमीबा का संक्रमण होने से आमातिसार (पेचिश) हो जाती है। कभी-कभी कान, टान्सिलों या मूत्र-मार्ग में उपस्थित जीवाणुओं के संक्रमण से दस्त लग जाते हैं। फैल्सीपैरम जाति के मलेरिया के जीवाणुओं के कारण भी दस्त लग सकते हैं। गन्दे स्थान पर परोसी गई ऐसी भोजन की वस्तु जिसमें संक्रामक जीवाणु मौजूद हों, खा लेने से भयंकर रूप से दस्त और उल्टियां होने लगती हैं। इस रोग को भोजन विषाक्तता (Food poisoning) कहते हैं।

भोजन के साथ ऐसी कोई वस्तु खा जाने से जिससे अंतड़ियों में जलन उत्पन्न होता हो, अतिसार हो जाता है। यदि ऐसी वस्तु काफी मात्रा में हो तो साधारणतः आमाशय ही वमन के रूप में उसको निकाल कर बाहर फेंक देता है परन्तु यदि उस वस्तु की मात्रा कम हो और वह आमाशय से आगे बढ़कर अंतड़ियों में पहुंच

जाए तो शरीर उसे दस्त के साथ निकाल बाहर करने की चेष्टा करता है। इससे प्रत्यक्ष है कि दस्त का रोकना किसी प्रकार हितकर नहीं हो सकता।

गर्मी की ऋतु में तेल या घी में तली वस्तुएं जैसे पूरी-कचौड़ी या पकौड़ी आदि भर पेट खा लेने से भी दस्त हो जाते हैं क्योंकि चिकनाई पेट में जाकर एकदम गर्मी उत्पन्न करती है जिसे आमाशय बर्दाश्त नहीं कर पाता अतः उल्टी या दस्तों के रूप में ऐसी चीजें शरीर से बाहर निकाल देता है। इसके अतिरिक्त कच्चे फल या अधपकी तरकारियां ज्यादा मात्रा में खा लेने से भी अतिसार हो जाता है।

सामान्य दस्तों की चिकित्सा—अगर दस्त भोजन में लापरवाही करने के कारण हुए हैं तो कोई दवा देने की जरूरत नहीं होती। अपच या हानिकारक वस्तु निकल जाने के बाद दस्त अपने आप बन्द हो जाते हैं और पेट ठीक हो जाता है। परन्तु इसमें प्रकृति को सहायता पहुंचाई जा सकती है और अंतड़ियों का कष्ट कम किया जा सकता है। इसके लिए ईसबगोल या ईसबगोल की भूसी 10 या 12 ग्राम लेकर इसे मीठा मिले मट्ठे अथवा दही में मिलाकर रोगी को सुबह व शाम सेवन करना चाहिए। यह आंतों का कष्ट भी कम करती है और मल को गाढ़ा भी करती है। पेट में ऐंठन और दर्द हो तो गर्म पानी में कपड़ा भिगो कर और निचोड़ कर इससे सेंकना चाहिए अथवा हैक्स्ट कम्पनी की बरालगन (Baralgan) की एक या टेब्लेट दिन में तीन बार देना चाहिए। यह औषधि मुख्य रूप से आंतों की ऐंठन समाप्त करने के लिए ही प्रयोग की जाती है। यदि ऐंठन न हो तो इसे प्रयोग न करें। होम्योपैथी की दवा **बैलाडोना मदर टिंक्चर** की [illegible] बूंदें पानी में मिलाकर पिलाने से भी आंतों की ऐंठन तुरन्त दूर होती है। अतिसार के रोगी को पूर्ण विश्राम करना चाहिए और नींबू मिला हुआ पानी थोड़ा थोड़ा जरूर पीते रहना चाहिए। इन रोगियों को दो-तीन दिन तक कोई भी ठोस चीज खाने को नहीं देना चाहिए अलबत्ता मट्ठा (छाछ) कई बार दिया जा सकता है। दही या मट्ठे में उपस्थित जीवाणु हमारी आंतों में रहने वाले जीवाणुओं की सहायता करते हैं जिससे दस्त व पेचिश रोग जल्दी दूर हो जाते हैं।

तीव्र अतिसार—कभी-कभी अचानक ही अतिसार गम्भीर रूप ले लेता है, रोगी को बहुत जल्दी-जल्दी पतले दस्त होने लगते हैं। इस प्रकार का अतिसार

प्राय: गर्मियों और बरसात के मौसम में होता है और अधिकतर इसका कारण भी भोजन या जल के साथ हानिकारक जीवाणुओं का पेट में पहुंच जाना है।

इस दशा में सबसे बड़ा खतरा रोगी के शरीर में पानी की कमी हो जाने (निर्जलीकरण Dehydration) का रहता है क्योंकि दस्तों के साथ उसके शरीर का बहुत-सा पानी निकल जाता है। बच्चों में निर्जलीकरण बहुत जल्दी हो जाता है जो तुरन्त उपचार न होने पर बच्चे की मृत्यु का कारण बन सकता है। भारत में दस्तों के रोगी अधिकांश बच्चों की मृत्यु वास्तव में निर्जलीकरण के कारण ही हो जाती है।

निर्जलीकरण क्या है ?

उल्टियां या दस्त अधिक होने पर जब शरीर में से बहुत पानी निकल जाता है तो पानी की कमी से अचानक कई लक्षण शरीर में उत्पन्न होने लगते हैं जिसका ध्यान रखना चाहिए जैसे जोरों की प्यास लगती है, मूत्र बहुत कम आता है या बन्द हो जाता है, मूत्र गहरे पीले रंग का होता है। वजन कम हो जाता है, मुंह और चेहरा सूखने लगता है, त्वचा का लचीलापन कम हो जाता है, आंखों की चमक कम होकर वे गड्ढे में धंसने लगती हैं। पानी की ज्यादा कमी हो जाने पर नब्ज कमजोर होकर तेज चलने लगती है, सांस की गति तेज हो जाती है, पिंडलियों में ऐंठन होने लगती है, रोगी को ज्वर हो जाता है और दौरे पड़ने लगते हैं। अन्त में मृत्यु हो जाती है।

निर्जलीकरण न होने पावे इसके लिए रोगी को जैसे ही दस्त शुरू हों तुरन्त बार-बार पानी, नींबू की शिकंजी, बिना दूध की चाय, फलों का जूस या शर्बत थोड़ा-थोड़ा करके पिलाना शुरू कर दें। नीचे लिखे फार्मूले से बनाया गया मिक्सचर पानी की कमी न होने देने के लिए बहुत उपयोगी पाया गया है। ऐसे मिक्सचरों को पुन: आर्द्रीकरण (Rehydration) पेय कहते हैं।

खाने का नमक	3.50 ग्राम (या चाय का आधा चम्मच)
सोडियम बाई कारबोनेट	2.50 ग्राम (या चाय का आधा चम्मच)
चीनी	40 ग्राम
पोटेशियम क्लोराइड (या थोड़ा सा नींबू का रस)	1.5 ग्राम
उबाल कर ठंडा किया हुआ पानी	1 लीटर

इन सबको मिला कर साफ वर्तन में भर लें। यदि सोडियम बाईकारबोनेट (खाने का सोडा) न मिले तो इसे छोड़ सकते हैं।

कम-पढ़ी-लिखी स्त्रियां पुन: आद्रीकरण पेय एक सरल विधि से बना सकती हैं। एक लोटा (लगभग एक सेर) उबाले हुए पानी में इतनी चीनी मिला दें कि यह खूब मीठा शर्बत हो जाए। अब इसमें तीन चुटकी भर नमक मिला दें।

दस्तों के रोगी बच्चों और बड़ों को हर 5-5 या 10-10 मिनट बाद यह पेय थोड़ा-थोड़ा करके पिलाते रहें। दिन भर में तीन या चार लीटर यह मिश्रण जवान आदमी को पिला देना चाहिए। बेशक उसे उल्टियां हो रही हों परन्तु यह मिश्रण पिलाते रहना चाहिए। इस मिश्रण को पिलाने से दो लाभ होते हैं। पहली बात तो यह कि कुछ रोगियों में केवल इसी मिश्रण से निर्जलीकरण अवस्था नहीं आने पाती और उसका रोग ठीक हो जाता है। दूसरा लाभ यह है कि अगर दस्त और उल्टियां गम्भीर रूप ले लें तथा अस्पताल ले जाना पड़ जाए तो इतनी देर लग जाने पर रोगी में निर्जलीकरण होने का भय नहीं रहता। यह मिश्रण उस समय तक पिलाते रहना चाहिए जब तक कि रोगी को खुलकर पेशाब न आने लगे।

साधारणतः दस्तों में कोई औषधि देने की आवश्यकता नहीं होती। बस रोगी को पुन: आद्रीकरण पेय बराबर देते रहें। यदि यह पेय देना शुरू करने के 18 घण्टे बाद भी दस्तों की संख्या में कमी न हो तो आंतों में संक्रमण की सम्भावना हो सकती है। इसके उपचार के लिए रोगी को कोई जीवाणु नाशक औषधि दी जानी चाहिए। फ्यूराजोलिडोन, कोट्राइमैक्साजोल अथवा मिश्रित एन्टीबायोटिक जैसे कि 'क्लोरोस्ट्रैप' दे सकते हैं। इनकी मात्रा व सेवन विधि पीछे **पेचिश** के अन्तर्गत दी जा चुकी हैं।

पेट की ऐंठन को दूर करने के लिए कोई ऐंठन रोकने वाली औषधि देना चाहिए जिसके सम्बन्ध में इस अध्याय में कई स्थानों पर लिखा जा चुका है।

यदि दस्तों के साथ उल्टियां भी हो रही हों तो निर्जलीकरण का खतरा और ज्यादा बढ़ जाता है विशेषकर छोटे बच्चों में। इस समय भी जलपूर्ति करने वाला उपरोक्त मिश्रण 5 से 10 मिनट बाद पिलाते रहना चाहिए। उल्टियां रोकने के लिए भी औषधि देनी चाहिए। इसके लिए फेनरजन (Phenergen) की 25 मिलीग्राम की एक या दो टेब्लेट थोड़े से पानी से खिला दें। इस **प्रकार** की उल्टियां

रोकने वाली औषधियों की दूसरी खुराक तब ही देनी चाहिए जब निर्जलीकरण समाप्त हो जाए और रोगी को खुलकर पेशाब आने लगे। यदि उल्टियां गम्भीर हैं तो ऐसी दवाएं केवल इन्जेक्शन द्वारा ही देनी चाहिए। इन दवाओं के सेवन के बाद रोगी को नींद आने लगती है।

यदि उल्टियां नियन्त्रण में न आ रही हों या रोगी में निर्जलीकरण होने लगा हो तो तुरन्त हस्पताल ले जाना चाहिए ताकि रोगी में इन्ट्रावीनस मार्ग से ग्लूकोज जल चढ़ाया जा सके।

पेट का दर्द

हमारे पेट के अन्दर आमाशय, आंतें, यकृत, गुर्दे, तिल्ली आदि कई अंग हैं जिनमें कोई खराबी उत्पन्न होने से पीड़ा उत्पन्न होने लगती है। उदाहरण के लिए कभी-कभी पथरी बन जाने पर गुर्दों में इतने जोर की पीड़ा (Renal colic) होने लगती है कि रोगी लोटा-लोटा फिरता है। इसी प्रकार की भयंकर पीड़ा पित्ताशय (Gall bladder) में पथरी बन जाने से हो जाती है। परन्तु पेट के दर्द से हमारा आशय बड़ी आंतों (बृहदांत्र या Bowl) में ऐंठन के कारण होने वाली पीड़ा से है।

पेट की पीड़ा इस बात का लक्षण है कि आंतों में अपचन हो गई है, इनके अन्दर कोई ऐसा भोजन पहुंच गया है जो हज्म नहीं हो पा रहा है या जिसके कारण आंतों में क्षोभ उत्पन्न हो गया है और बड़ी आंतें इसे बाहर निकालने का प्रयत्न कर रही हैं। दस्त लगने का भी प्रायः यही कारण होता है और ऐसा भी देखा जाता है कि पेट में दर्द के बाद ही दस्त लग जाते हैं।

पेट का दर्द अचानक ही शुरू हो जाता है और प्रायः रात्रि में इसका आक्रमण होता है। बड़ी आंतों में लहरें-सी उठती हैं और उनमें बहुत ऐंठन होती है, रोगी को मिचली होती है और कभी-कभी उल्टी भी हो जाती है। नाभि के पास की पेशियां संकुचित होती हैं और यह भाग अन्दर को दबा हुआ-सा मालूम पड़ता है। आंतों में कब्ज और गैस भरी होती है। थोड़ी देर बाद रोगी को मल त्याग की तीव्र इच्छा होती है, मल त्याग के साथ गैस भी निकलती है जिससे रोगी को बड़ी राहत मिलती है। आंतों पर दबाव डालने से रोगी को आराम महसूस होता है इसीलिए रोगी प्रायः पेट के बल लेटता है या लोट-पोट होता रहता है। यदि रोगी

खाट पर लेटा है या पीठ के बल लेटा है तो वह अपने घुटने पेट पर इतने झुका लेता है कि जांघों का दबाव बड़ी आंतों पर पड़ने लगता है। इस स्थिति में टांगें रखने से पेट की पेशियों का तनाव कम होकर वे ढीली हो जाती हैं।

कभी-कभी पेट में दर्द अपेन्डिक्स (Appendix) में सूजन आ जाने के कारण भी हो जाता है। यह भयंकर दर्द है, हमारी छोटी आंत जहां बड़ी आंत से मिलती है वहां बड़ी आंत में 4-5 इंच लम्बी छोटी उंगली जैसी मोटी एक थैली निकली होती है जिसे अपेन्डिक्स कहते हैं। कभी-कभी इस थैली के अन्दर भोजन की कोई कठोर वस्तु जैसे किसी वस्तु के बीज फंसकर सड़ने लगते हैं जिससे इस थैली में सूजन आ जाती है जिससे रोगी को अत्यन्त पीड़ा होती है। पहले तो यह पीड़ा नाभि के चारों ओर होती है परन्तु बाद में यहां से हटकर उस स्थान में होने लगती है जिसे 'मैकबर्नी का बिन्दु' कहते हैं। यह स्थान जांघ और नाभि के लगभग बीच में होता है। इसकी सूजन के कारण रोगी को टांगें अपने पेट की तरफ लाने में पीड़ा होती है अतः प्रायः रोगी को टांगें थोड़ी फैलाए हुए निश्चल ही लेटने में आराम मिलता है। पेट के दर्द में साधारणतया: बुखार नहीं होता परन्तु अपेंडिसाइटिस (अपेन्डिक्स में सूजन) रोग में आमतौर पर रोगी को बुखार हो जाता है। हालांकि यह बुखार प्राय: 100 डिग्री फा० से अधिक नहीं होता। कुछ रोगियों को उल्टियां भी होने लगती हैं अथवा जी मिचलाता है। थोड़ी देर बाद जांघ और नाभि के बीच उपरोक्त बिन्दु के चारों ओर का उदर का भाग लकड़ी की तरह कठोर हो जाता है। इस समय यदि इस भाग को उंगलियों से दबाया जाए तो पीड़ा होती है परन्तु उंगलियां हटाते ही पीड़ा बहुत ज्यादा होने लगती है। इस लक्षण को 'प्रतिक्षेप दाब वेदना' कहते हैं। इस रोग की पहचान करने में यह लक्षण बहुत महत्त्वपूर्ण है।

आंतों में कोई रुकावट पड़ जाने से भी भीषण रूप से पेट में दर्द होता है। आंतों में अवरोध के कई कारण हो सकते हैं। कई बार आंतों में उपस्थित केंचुए एक गुच्छा जैसा बना कर आंतों में कहीं मर फंस जाते हैं, कई बार आंत का ही एक भाग अपने से ऊपर के भाग में थोड़ी दूर तक घुस जाता है (इन्टरसेप्शन) अथवा हर्निया के स्थान पर आंत फंस जाती है। इन सब कारणों से आंतों में उपस्थित मल आगे नहीं सरकता फलस्वरूप रोगी के पेट में असह्य पीड़ा होती है, पेट फूल जाता है, अवरोध के स्थान से ऊपर रुका हुआ पदार्थ उल्टियों के रूप में बाहर

निकलता है। ये उल्टियां एक मीटर दूर तक जा सकती हैं। उल्टियां प्रायः हरे रंग की होती हैं और इनमें से पाखाने जैसी दुर्गन्ध आती है। रोगी को कब्ज होता है। या तो टट्टी आती ही नहीं यदि आती है तो बहुत थोड़ी सी। कई बार मल की जगह केवल खून में मिश्रित थोड़ी-सी आंव आती है, पेट सूजा हुआ और कठोर हो जाता है तथा छूने पर बहुत पीड़ा होती है। रोगी अपनी टांगों को ऊपर उठा-उठा कर अपने पेट को बचाने की कोशिश करता है। पेट प्रायः शान्त हो जाता है। यदि बच्चे के पेट पर कान रखा जाए तो स्वस्थ अवस्था में होने वाली गुड़गुड़ की आवाज सुनाई नहीं देती।

उपरोक्त दोनों तथा कुछ अन्य कारणों से उत्पन्न उदर की गम्भीर स्थिति को डाक्टरी की परिभाषा में तीव्र उदर (Acute abdomen) कहते हैं।

उपरोक्त विवरण से पता लग जाता है कि पेट के दर्द को साधारण रोग समझना भूल होगी। सबसे पहले यह मोटा अनुमान लगा लेना चाहिए कि पेट का दर्द भोजन में लापरवाही के कारण है अथवा अपेन्डिक्स में सूजन या आंतों में अवरोध जैसी भयंकर स्थिति के कारण से है। यदि रोगी के पेट में दर्द रह-रहकर उठता है जिसे मरोड़ कहते हैं अथवा रोगी को हल्के या गम्भीर दस्त हैं अथवा पहले भी इस प्रकार का दर्द उसे होता रहा है तो ऐसा समझा जा सकता है कि पेट में दर्द अनुचित भोजन के कारण है। इसका उपचार साधारण दवाओं से हो सकता है।

इसके विपरीत यदि रोगी को आंतों में पीड़ा के साथ-साथ बदबूदार उल्टियां भी हो रही हैं परन्तु टट्टी नहीं हो रही है, रोगी के पेट का दर्द बढ़ता ही जा रहा है, पेट सूजा हुआ और कठोर है, रोगी पेट पर हाथ नहीं रखने देता तो 'तीव्र उदर' की स्थिति समझनी चाहिए। इस दशा में पेट का आपरेशन करना आवश्यक होता है। इन रोगियों को तुरन्त हस्पताल ले जाना चाहिए। इन्हें कुछ भी चीज खाने-पीने को नहीं देना चाहिए परन्तु यदि ऐसा मालूम पड़े कि रोगी के शरीर में निर्जलीकरण होने की संभावना है तो थोड़ा-थोड़ा घूंट-घूंट करके पानी पिलाया जा सकता है।

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि यदि किसी रोगी को लगातार छः घण्टे से अधिक समय तक पेट में दर्द बना रहे तो समझना चाहिए कि उसको भी शायद आपरेशन की जरूरत पड़ेगी।

चिकित्सा—जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है तीव्र उदर की अवस्था में पेट का आपरेशन करके अपेन्डिक्स को काटना या आंत की रुकावट दूर करना ही एकमात्र चिकित्सा है। साधारण पेट दर्द हो तो पेट पर एक तौलिया डालकर एक बोतल में गर्म पानी भर कर इस तौलिया पर रखकर पेट की सिकाई की जाए। लेकिन पेट को मलना नहीं चाहिए क्योंकि हो सकता है कि आपको पहचान न पड़ रही हो और अपेन्डिक्स में सूजन आ गई हो। इस दशा में पेट मलने से अपेन्डिक्स फट कर रोगी की मृत्यु हो सकती है। ऐसे कई केस हो भी चुके हैं। वास्तव में कई बार डाक्टरों को भी पहचान नहीं पड़ती कि पेट दर्द उपरोक्त में से किस कारण से है। जहां तक दवा का प्रश्न है चौथाई से आधा ग्राम नौसादर ताजा पानी से खिलाना चाहिए। प्रायः पांच-पांच मिनट बाद दो-तीन बार नौसादर खिलाने से दर्द शांत हो जाता है। अथवा डाबर का 'पुदीन हरा' या 'अमृत धारा' की कुछ बूंदें पानी में मिलाकर पिलाने से भी दर्द शान्त होता है और वायु खारिज होती है। अथवा 'एनल्जिन' की एक या दो टेब्लेट खिलाने से भी आंतों का दर्द कम होता है।

अंग्रेजी चिकित्सा में आंतों तथा पेशियों की ऐंठन बन्द करने के लिए बैलाडोना तथा एट्रोपीन दो मुख्य पदार्थ प्रयोग किए जाते हैं। इन पदार्थों को सम्मिलित करके कई पेटेन्ट औषधियां बनाई गई हैं। इन औषधियों में इन्डोफार्मा कम्पनी की स्पाजिमन्डोन टेब्लेट (Spasmindon Tablet), सैन्डोज कम्पनी का बैलाडीनल-इन (Belladenal-in) टेब्लेट तथा सीबा कम्पनी का स्पाज्मो-सीबल्जिन (Spasmo-cibalgin) टेब्लेट का बहुत प्रयोग होता है। इनमें से जो भी मिल सके वह एक टेब्लेट पानी के साथ खिला दें। इसमें लाभ न हो तो तीन-तीन घण्टे बाद एक-एक टेब्लेट और खिला दें। प्रायः पहली टेब्लेट देते ही पेट की ऐंठन कम होने लगती है।

४. कान, नाक तथा गले के रोग

कान, नाक और गला (Pharynx) एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। नाक अन्दर जाकर गले में मिल जाती है। दोनों कानों के अन्दर बीच के भाग या मध्यकर्ण के फर्श में से एक वायु मार्ग गले तक जाता है जिसे यूस्टेकी नलिका कहते हैं। यही कारण है कि इनमें से किसी भी अंग में जीवाणुओं का आक्रमण हो जाए तो यह रोग फैलकर एक-दूसरे अंग में जा सकता है। बड़े अस्पतालों में भी इन तीनों अंगों की चिकित्सा के लिए अलग विभाग होता है जिसे E.N.T. (कान, नाक, गला) विभाग कहते हैं। वैसे तो नाक, कान व गले के रोगों को आसानी से ठीक किया जा सकता है परन्तु यदि निदान न हो सके तो किसी स्पेशलिस्ट डाक्टर की सलाह लेना चाहिए।

कान के रोग

कान के रोगों का वर्णन करने से पहले अगर हम कुछ ज्ञान कानों की रचना और कार्य प्रणाली का प्राप्त कर लें तो हमें इनके रोगों को समझने में बड़ी सुविधा रहेगी।

कान के तीन भाग होते हैं—बाह्य कर्ण, मध्यकर्ण और आंतर कर्ण। बाह्य कर्ण कान का सबसे बाहरी भाग है जो आगे निकला होता है। इसकी रचना कार्टिलेज से होती है। इसको कर्ण पल्लव या कान की लौ कहते हैं। यह भाग ध्वनि तरंगों को एकत्रित करके एक नलिका में भेजता है जिसे कर्णनाल या श्रवण मार्ग कहते हैं। श्रवण मार्ग में एक मोमी परत लगी होती है जो बाहर से कान में घुसने वाले जीवाणुओं को फांस लेती है और अन्दर नहीं जाने देती। श्रवण मार्ग

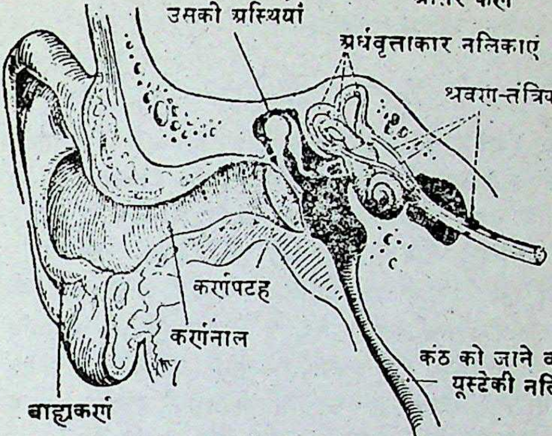

हमारे कान की रचना : हमारे मुंह, गले या नाक में जीवाणुओं का आक्रमण हो जाने पर जीवाणु यूस्टेकी नलिका के मार्ग से कान के मध्य भाग में प्रविष्ट होकर इसे रोग ग्रस्त बना देते हैं।

के अन्दरूनी सिरे पर कुछ-कुछ तिरछी स्थिति में एक पतली नीली भूरी झिल्ली लगी होती है जिसे कर्ण पटह या कान का पर्दा (Ear drum) कहते हैं।

कान के पर्दे के पीछे मध्य कर्ण होता है। यह एक गुफा जैसी होती है जिसमें कई महत्त्वपूर्ण रचनाएं होती हैं। इसमें तीन नन्हीं-नन्हीं अस्थियां होती हैं जिनके द्वारा कान के पर्दे का सम्बन्ध मध्य कर्ण से बना रहता है। कान के बाहर से जो ध्वनि तरंगें एकत्रित होकर पर्दे पर पहुंचती हैं उन्हें ये छोटी अस्थियां ग्रहण करके आंतर कर्ण अर्थात् कान के सबसे अन्दर के भाग में पहुंचा देती हैं।

मध्य कर्ण के फर्श से एक यूस्टेकी नलिका गले में जाती है। इसके अन्दर भी श्लेष्मीय झिल्ली होती है। गले से वायु इस नलिका में होकर मध्य कर्ण में जाती रहती है जिससे कान के पर्दे के दोनों ओर वायु का दबाव बराबर बना रहता है।

आंतर कर्ण (कान का सबसे अन्दर का भाग) में कई महत्त्वपूर्ण रचनाएं होती हैं। यहां पर मध्य कर्ण से आई हुई ध्वनि तरंगों को श्रवण तन्त्रिका (Auditory

nerve) ग्रहण कर लेती है और मस्तिष्क को पहुंचा देती है। मस्तिष्क ही हमें इन तरंगों का विश्लेषण करके बताता है कि यह आवाज चूड़ियां खनकने की है या कुत्ते के भौंकने की अथवा रेल की सीटी की।

कान में दर्द

कान में दर्द कई कारणों से हो सकता है। सड़े-गले दांत, श्रवण मार्ग में फुंसियां हो जाने, टांसिल रोगग्रस्त हो जाने अथवा मध्य कर्ण में जीवाणुओं का आक्रमण हो जाने से कान में भारी पीड़ा हो सकती है। मध्य कर्ण शोथ (Otitis media) रोग के कारण बच्चों के कान में दर्द हो जाता है। यह दर्द प्रायः दोनों कानों में होता है। दर्द बहुत गहरा होता है जिसमें चीसें लगती हैं। प्रायः लोग कान को सींक में रुई लगा कर साफ किया करते हैं या किसी कनमैलिए से साफ कराते हैं। दोनों स्थिति में गन्दी रुई, सींक व कनमैलिए द्वारा इस्तेमाल किए गए औजार तथा असावधानीपूर्ण कान साफ करने की विधियों से कान में जख्म व शोथ हो जाता है। कनमैलिए तो कभी-कभी कान साफ करते समय कान का पर्दा ही फाड़ देते हैं क्योंकि कान की विशिष्ट प्रकार की बनावट के कारण वह अन्दर का भाग ठीक से नहीं देख पाते हैं।

कान में दर्द होने पर ऐस्प्रिन या पैरासीटामोल की टेब्लेटस खिलाना चाहिए। इनकी दो-दो टेब्लेट दिन में दो-तीन बार दे सकते हैं। रात्रि में दर्द के मारे नींद न आती हो तो कोई नींद लाने वाली दवा देना जरूरी हो जाता है। यदि दिन में ही कान में दर्द होने लगे तो पहले डाक्टर को ही दिखाना चाहिए ताकि उसकी दवा से रात्रि होते-होते आराम आ जाए।

मध्य कर्ण में संक्रमण (Otitis media)

कान का मध्य भाग बहुत संवेदनशील और संक्रमण जल्दी ग्रहण करने वाला होता है। कमजोर बच्चों में जुकाम या रोगग्रस्त टांसिलों या एडीनायड्स से रोग के जीवाणु यूस्टेकी नलिका में होते हुए मध्यकर्ण तक पहुंच जाते हैं। इस संक्रमण के कारण मध्य कर्ण में पीप (Pus) बनना शुरू हो जाती है और उधर यूस्टेकी नलिका भी सूज जाती है अतः पीप को निकलने का मार्ग न मिलने से यह कर्ण पटह (कान का पर्दा) पर दबाव डालती है जिसके कारण कान में बहुत तेज दर्द

होता है। कर्ण पटह के फटने से पहले यदि डाक्टर हल्का-सा चीरा लगा देता है तो पीप बाहर निकल आती है जिससे कर्ण पटह पर इसका दबाव कम हो जाता है तथा यह चीरे से बना हुआ छिद्र शीघ्र ही भर जाता है। इसके विपरीत यदि समय पर ठीक तरह उपचार नहीं होता तो पीप के दबाव से कर्ण पटह फट जाता है। जब कर्ण पटह इस तरह अनियमित ढंग से फटता है तो यह क्षतिग्रस्त हो जाता है जिसके कारण इससे बहुत दिनों तक कान बहता रहता है और मनुष्य थोड़ा या अधिक बहरा हो सकता है। यह छिद्र बहुत दिनों में जाकर ठीक होता है।

चिकित्सा—कान का कोई भी भाग हो उसकी चिकित्सा अनुभवी डाक्टर से ही करानी चाहिए। डाक्टरों के पास इस प्रकार के यंत्र होते हैं जिनसे कान के अन्दर की दशा अच्छी तरह देखी जा सकती है और रोग की पहचान की जा सकती है। उसी के अनुसार डाक्टर उपचार करता है।

यदि बच्चे के हाल ही में सर्दी जुकाम हुआ था तो इस बात की संभावना है कि इसके संक्रमण से उसकी यूस्टेकी नलिकाएं बन्द हो गई हैं। ऐसे समय $1\frac{1}{2}$ प्रतिशत ऐफेड्रीन सोल्यूशन की दो-दो या तीन-तीन बूंदें दोनों नथुनों में डाली जाती हैं। इस समय रोगी को सिर पीछे कर लेना चाहिए और सोल्यूशन को नाक के अन्दर सूंतना चाहिए। इस उपचार से बन्द नाक तो खुल ही जाती है साथ ही यूस्टेकी नलिकाएं भी खुल जाती हैं और कान का दर्द जाता रहता है। साधारण रोग तो इसी उपचार से समाप्त हो जाता है परन्तु यदि रोग गम्भीर है तो इन्जेक्शन द्वारा पेनिसिलिन देनी पड़ सकती है और जरूरी हुआ तो कान के पर्दे में जरा-सा चीरा भी लगाना पड़ सकता है।

सर्दी–जुकाम और फ्लू

हमारे श्वसन संस्थान में जो पाइप जैसे हैं इन पाइपों के अन्दर की ओर एक पतली झिल्ली चढ़ी होती है और इस झिल्ली के ऊपर एक ग्रीज जैसी चिकनाई लगी होती है जिसे श्लेष्म या बगलम कहते हैं। नाक से लेकर श्वसनिकाओं तक यह श्लेष्मीय झिल्ली चली जाती है। अंग्रेजी में इसे 'म्यूकस मेम्ब्रेन' कहते हैं।

सर्दी-जुकाम और फ्लू का कारण एक अत्यन्त सूक्ष्म वायरस (विषाणु) हैं। जुकाम वाले रोगी के छींकने या खांसने से ये वायरस हवा में उड़कर पास बैठे

हुए व्यक्ति की सांस के साथ उनकी नाक की श्लेष्मीय झिल्ली पर आक्रमण कर देते हैं। आक्रमण करते ही ये वायरस अपना विष छोड़ने लगते हैं जिससे श्लेष्मीय झिल्ली रोगी होकर इस पर सूजन आ जाती है, यह इस विष से मुक्ति पाने के लिए भारी मात्रा में श्लेष्म (रेंट) का उत्पादन करने लगती है जिसके कारण हमें बार-बार नाक सिनकने की जरूरत पड़ती है। वायरसों का यह विष गले तक पहुंच जाता है तो गले में खराशें पड़ने लगती हैं, आवाज बैठ जाती है, खांसी उत्पन्न हो जाती है और सिर में दर्द रहता है। छींक के साथ लाखों वायरस उड़-कर निकट बैठे व्यक्ति को भी अपना शिकार बना लेते हैं। वायरसों के विष के कारण अनेक व्यक्तियों को ज्वर भी हो जाता है।

सर्दी-जुकाम और फ्लू का आक्रमण अचानक ही होता है और साधारणतः एक हफ्ते के अन्दर रोग अपने आप ही समाप्त हो जाता है।

चिकित्सा—जहां तक सम्भव हो सके औषधियों का प्रयोग करने के बजाए घर में लेट कर आराम करें। जिन लोगों में विटामिन 'सी' की कमी होती है उन पर सर्दी-जुकाम का आक्रमण बार-बार होता है अतः जुकाम होते ही आधा गिलास गर्म पानी में एक नीबू निचोड़कर पी लें। दिन में दो बार इसी प्रकार नींबू पिएं।

खाना 24 घण्टे तक बिल्कुल न खाएं। उसके बाद उबली हुई कोई सब्जी और थोड़े उबले हुए टिमाटर मिलाकर खा लें। यदि सिर में ज्यादा दर्द हो तो छः-छः घण्टे बाद एक या दो टेब्लेट ऐस्प्रिन या पैरासीटामोल की खा लें। ये दवाएं हरारत को, गले की खराशों और सिर दर्द को भी कम करती हैं। बार-बार नाक साफ करते रहने से नाक सूज कर लाल हो जाती है अतः हथेली में जरा-सा नमक मिला गर्म पानी लेकर अहिस्ता से नाक में सुड़क लें। इसके बाद नाक टपकने दें। दिन में तीन-चार बार ऐसा ही करें। इस क्रिया से नाक के अन्दर की फालतू श्लेष्म निलकती रहती है जिससे रोगी को राहत मिलती है।

यदि नाक बहुत भरी हुई हो जिसके कारण माथे में दर्द और भारीपन हो अथवा कानों में भी दर्द होने लगा हो तो इसके लिए नाक में डालने की कुछ विशेष प्रकार की औषधियां बनी हैं जिन्हें डिकन्जेस्टैन्ट (Decongestant) कहते हैं। इन्हें नाक में डालने से रुकी हुई नाक बहने लगती है जिससे माथे और कान की पीड़ा भी समाप्त हो जाती है। इस प्रकार की औषधियों में सीबा गायगी

दवा का भपारा लेने की विधि : जुकाम व ब्रांकाइटिस रोगों में इस विधि से दवा की वाष्प ली जाती है।

कम्पनी की औटरीविन (Otrivin) तथा ज्याफ्रे-मैनर्स की डिस्ट्रान नेसल ड्राप्स (Distran Nasal Drops) काफी प्रसिद्ध हैं।

अथवा एक चाय का चम्मच भर पानी (5 मिलीलीटर) में ऐफेड्रीन की 15 मिलीग्राम वाली एक टिकिया घोल कर शीशी में रख लें। यह सस्ता परन्तु अत्यन्त प्रभावशाली डिकन्जेस्टैन्ट बन गया। इस डिकन्जेस्टैन्ट को प्रयोग करने की विधि यह है कि पहले हथेली में जरा-सा नमक का पानी लेकर इसे नाक से सूतें और नाक टपकने दें। इसके बाद एक करवट को सिर झुकाकर नीचे वाले नथुने में दो-तीन बूंदें टपकाएं। अब दो-तीन मिनट प्रतीक्षा करें तथा सिर दूसरी करवट को झुकाकर उधर के नीचे के नथुने में इसी तरह डालें। स्मरण रखें कि ये

दवाएं दिन में तीन बार से अधिक न डालें और न तीन दिन से अधिक समय तक डालें। भरी नाक खोलने के लिए डिकन्जेस्टैन्ट सीरप तथा टेब्लेटस भी आती हैं।

यदि रोगी को बार-बार सूखी खांसी उठती हो और सिर भी भारी हो और ऐसा प्रतीत हो कि शायद रात को खांसी के कारण नींद नहीं आ सकेगी तो इसके लिए अच्छा उपाय यह है कि आधा या पौना लोटा गर्म पानी में जरा-सा 'विक्स वेपोरब' या अन्य कोई पेन बाम डाल कर इसकी भाप सूंघें। यह भाप दिन में 3-4 बार सूंघनी चाहिए। इससे सिर हल्का हो जाता है। भाप चारों तरफ न उड़े इसके लिए एक तौलिया सिर से लेकर लोटे तक ढक देनी चाहिए। याद रखें कि पानी उबलता हुआ नहीं हो क्योंकि इसमें दवा जल्दी उड़ जाती है। अगर कोई दवा न मिले तो तुलसी अथवा यूक्लिप्टिस (सफेदा) के 10-12 पत्ते उबलते हुए पानी में छोड़ दें। इन दोनों वनौषधियों के पत्तों में उड़नशील तेल होता है जो जीवाणुनाशक तथा पीड़ाहर गुण रखता है। यदि कोई भी चीज न मिले तो केवल सादे उबलते पानी की भाप सूंघने से भी बहुत राहत मिलती है।

रात्रि को सोते समय खाट के सिरहाने की तरफ पायों के नीचे दो-दो ईंटें रख कर सिरहाना छः इंच ऊंचा कर लें। इस प्रकार सिरहाना ऊंचा करके सोने से श्लेष्म नाक में एकत्रित नहीं होती और नाक हल्की रहती है।

यदि सर्दी-जुकाम या फ्लू एक सप्ताह से अधिक समय तक रहे या व्यक्ति को बुखार भी हो जाए या उसे खांसी के साथ काफी मात्रा में बलगम आ रहा हो या छाती में दर्द हो तो उसे ब्रांकाइटिस या निमोनिया हो गया है यह समझना चाहिए। इन लोगों को कोई एन्टीबायोटिक औषधि देना आवश्यक हो जाता है (देखिए **ब्रांकाइटिस**)

सर्दी-जुकाम में प्रायः गला खराब हो जाता है। इसके लिए विशेष दवा की जरूरत नहीं है। गुनगुने पानी से गरारे करने से लाभ हो जाता है। परन्तु यदि तेज बुखार के साथ गला भी खराब हो जाए तो समझना चाहिए कि गले में जीवाणुओं का संक्रमण पहुंच गया है। इसके लिए रोगी को कोई एन्टीबायोटिक औषधि देनी पड़ सकती है (आगे देखिए **गले के रोग**)

बिगड़ा हुआ जुकाम

हमारी दोनों भवों के ऊपर दोनों भवों के बीच में खोपड़ी की हड्डी अन्दर से शहद की मक्खी के छत्ते की तरह बनी हुई और अन्दर से खोखली गुफा की तरह होती है। इस गुफा को 'साइनस' (Sinus) कहते हैं। इस गुफा से एक तंग-सा मार्ग नाक के ऊपरी भाग में आकर खुलता है। नाक के बराबर और आंखों के नीचे गाल की हड्डियों में भी ऐसी ही गुफाएं होती हैं। इनमें से तंग-नलियां आकर नाक के अन्दर खुलती हैं। इन गुफाओं (साइनसों) के अन्दर भी हर समय श्लेष्म भरा रहता है और थोड़ा-थोड़ा करके नाक के अन्दर आता रहता है और इस प्रकार यदि इनमें कोई रोग उत्पादक जीवाणु घुस जाते हैं तो वे नाक में आकर नाक की श्लेष्म के साथ या तो नाक सिनकने में बाहर निकल जाते हैं या अन्दर गले में जाकर अन्न मार्ग से आमाशय में पहुंच कर आमाशय रस से नष्ट हो जाते हैं।

कभी-कभी हमारी नाक के अन्दर इन्फ्लुऐंजा या जुकाम के वायरसों अथवा अन्य रोगकारक जीवाणुओं का आक्रमण हो जाने पर नाक की श्लेष्मीय झिल्ली सूज कर भारी मात्रा में श्लेष्म का उत्पादन करने लगती है जो कि बाद में गाढ़ा हो जाता है और इसमें पीप भी पड़ सकती है। नाक में इस प्रकार का संक्रमण होने पर यह जीवाणु साइनसों में भी प्रविष्ट हो जाते हैं जिससे इनमें भी सूजन आकर भारी मात्रा में श्लेष्म बनने लगती है। सूजन आ जाने से इनके वे रास्ते जिनमें से होकर स्वस्थ अवस्था में श्लेष्म नाक में आती रहती है, बन्द हो जाते हैं। फलस्वरूप श्लेष्म साइनसों के अन्दर ही रुक जाने से हर समय माथा भारी रहता है और सिर दर्द बना रहता है। जुकाम ठीक हो जाने पर ये साइनसों के रास्ते फिर खुल जाते हैं तथा पहले की तरह ही इनमें से श्लेष्म हर समय नाक में आती रहती है।

परन्तु कभी-कभी जुकाम के वायरसों का आक्रमण गम्भीर हो जाने पर साइनसों के अन्दर पीप बन जाती है और इनसे नाक के अन्दर आने का रास्ता बन्द हो जाने के कारण वहीं फंसी रहती है। इस समय रोगी को ज्वर हो जाता है, ठण्ड लगकर कंपकंपी होती है तथा समस्त शरीर ढीला-ढीला गिरा हुआ मालूम पड़ता है। यह सूजन यूस्टेकी नलिकाओं में पहुंच जाती है तो बहरापन आ सकता

है और कानों में दर्द तथा मध्यकर्ण शोथ रोग उत्पन्न हो सकता है। जैसे-जैसे यह रोग पुराना होता जाता है यह अन्य रोग उत्पन्न करता चला जाता है विशेष कर श्वास सम्बन्धी रोग इससे बहुत जल्दी होते हैं। इसमें दमा (Asthma) भी हो सकता है।

चिकित्सा—माथे में इतनी पीड़ा होती है कि रोगी को तुरन्त इससे मुक्ति दिलाना जरूरी होता है। इसके लिए जैसा कि जुकाम में बताया गया है, रोगी को दिन में 3-4 बार सादा उबलते पानी की भाप या गर्म पानी में टिंक्चर बेन्जोइन (Friar's balsam) अथवा जरा-सा कोई पेन बाम डालकर इसकी भाप सूंघनी चाहिए। इससे माथा बड़ा हल्का हो जाता है। ऐस्प्रिन की दो-दो टेब्लेटस प्रत्येक चार-चार घण्टे बाद खिलाने से सिर दर्द और ज्वर में आराम मिलता है।

साइनसों का मार्ग खोलने के लिए कभी-कभी नाक में डिकन्जेस्टैंट औषधि की बूंदें टपकाना जरूरी हो जाता है। इन औषधियों की प्रयोग विधि **जुकाम** के अन्तर्गत दी गई है।

इस रोग में अक्सर किसी एन्टीबायोटिक औषधि का सेवन कराना जरूरी हो जाता है ताकि जीवाणुओं को नष्ट किया जा सके। आजकल टेट्रासाइक्लिन अधिक उपयोग की जाती है। इसका 250 मिग्रा० का एक-एक कैपसूल छः-छः घण्टे बाद देना चाहिए। यह देखा गया है कि यह रोग जितना पुराना होता है उतना ही कठिनता से जाता है।

इस रोग में नाक बहुत जोर लगाकर नहीं सिनकना चाहिए और न ही नाक में दवाएं डालना चाहिए।

गले के रोग

गला खराब और टान्सिल बढ़ना

हमारे मुंह में अन्दर की ओर जो कौआ लटका दिखाई देता है इसके दोनों ओर तालू में टान्सिल नामक ग्रन्थियां होती हैं। इन टान्सिलों पर कोकाई तथा अन्य कई जाति के जीवाणु मेहमान के रूप में पलते रहते हैं और बच्चों को कोई हानि नहीं पहुंचाते। परन्तु कई बार अचानक उसके शरीर में कहीं से भारी मात्रा

में जुकाम या फ्लू आदि वायरसों का आक्रमण हो जाने पर बच्चा इतना कमजोर हो जाता है कि ये गले में रहने वाले जीवाणु ही उसकी कमजोरी का फायदा उठाकर गले और टान्सिलों को रोगग्रस्त कर देते हैं। इनके संक्रमण के फलस्वरूप गला सूज जाता है और गहरे लाल रंग का दिखाई देता है। जब कोई वस्तु निगली जाए तो गले में दर्द होता है। यहां तक कि पानी पीने में भी दर्द होता है। टान्सिल बड़े हो सकते हैं उनमें दर्द हो सकता है या उनमें पीप पड़ सकती है। रोगी को तेज ज्वर हो जाता है।

चिकित्सा—एक गिलास गुनगुने पानी में एक चाय का चम्मच नमक मिला कर इससे गरारे करवाएं। दर्द के लिए ऐस्प्रिन या पैरासीटामोल सेवन कराएं। हल्का ज्वर भी इनसे उतर जाता है। 'स्ट्रेप्सिल्स' की टेब्लेट चूसने से भी गले की खराशें कम होती हैं। कुछ बच्चों के टान्सिल बार-बार बढ़ते हैं परन्तु बच्चे इनका कष्ट झेल लेते हैं अतः इनको आपरेशन द्वारा कटवाने की जरूरत नहीं है। इन्हें उसी समय कटवाना चाहिए जब ये बार-बार बढ़ कर बच्चे को गम्भीर रूप से रोगी कर देते हों।

खराब गला और आमवातीय ज्वर का खतरा

सर्दी-जुकाम और फ्लू के कारण जो गला खराब होता है इसमें उपरोक्त घरेलू चिकित्सा ही काफी रहती है।

परन्तु कभी-कभी गले की खराबी एक गम्भीर संक्रामक रोग के रूप में प्रकट होती है जिसे स्ट्रेप थ्रोट कहते हैं। यह रोग बच्चों और युवा व्यक्तियों में अधिक होता है। यह अक्सर बिना सर्दी जुकाम के यकायक शुरू होता है जिसमें गला खराब होने के साथ-साथ बुखार भी होता है। किसी बच्चे को उल्टियां भी लग जाती हैं। टांसिल और गले में सूजन आकर इनका रंग लाल हो जाता है और जबड़ों के नीचे की लसीका ग्रन्थियां सूज कर पीड़ादायक हो जाती हैं। ऐसा समझा जाता है कि स्ट्रैप्टोकाकस नामक जीवाणु टान्सिलों के अन्दर प्रविष्ट होकर उन्हें रोगग्रस्त कर देते हैं।

चिकित्सा—यह अत्यन्त गम्भीर रोग होता है जिसके कुछ दिनों बाद बच्चे पर आमवातीय ज्वर (Rheumatic Fever) का आक्रमण हो सकता है अतः इसकी तुरन्त रोकथाम के लिए पेनिसिलिन की टेब्लेटस बच्चे को लगातार दस दिन

तक सेवन कराएं। ऐसा करने से आमवात की संभावना कम हो जाती है। इन बच्चों को अन्य बच्चों से अलग रखें और इनकी झूठी वस्तु और किसी को न खाने दें।

बच्चों में आमवातीय ज्वर

यह रोग 5 वर्ष से लेकर 15 वर्ष की आयु के बच्चों को अधिकतर होता है। उपरोक्त स्ट्रैप थ्रोट होने से एक से तीन सप्ताह बाद आरम्भ होता है। इसके मुख्य लक्षण ये हैं : ज्वर, जोड़ों में दर्द जो विशेष रूप से पहले कलाइयों और टखनों में, फिर कुहनियों और घुटनों में भी शुरू हो जाता है। जोड़ सूजने के साथ-साथ गर्म और लाल भी हो सकते हैं। चमड़ी के नीचे गोल आकृति में मुड़ी हुई लाल रेखाएं या गिल्टियां उत्पन्न हो जाती हैं। गम्भीर स्थिति में श्वास कष्ट और हृदय में दर्द होने लगता है।

चिकित्सा—स्ट्रैप थ्रोट के लक्षण प्रकट होते ही बच्चे को पेनिसिलिन की टेब्लेटस देना शुरू कर देना चाहिए और दस दिन तक यह उपचार जरूर चलना चाहिए। जोड़ों की सूजन कम करने के लिए बच्चे को बड़ी मात्रा में ऐस्प्रिन देनी जरूरी होती है। बारह वर्ष के बच्चे को ऐस्प्रिन की 300 मि० ग्राम वाली दो-दो टेब्लेट दिन में छः बार देनी चाहिए। ये टेब्लेटस दूध या सोडा बाईकार्ब (खाने का सोडा) के साथ दें ताकि पेट में दर्द न हो। यदि कान बजने लगें तो ऐस्प्रिन की मात्रा कम कर दें। इन बच्चों को किसी अनुभवी डाक्टर को अवश्य दिखाना चाहिए क्योंकि इनको पेनिसिलिन की टेब्लेट रोजाना बिना नागा पांच या अधिक वर्ष तक सेवन करानी पड़ सकती है ताकि उनका हृदय क्षतिग्रस्त न हो जाए।

नोट—स्ट्रैप थ्रोट को उत्पन्न करने वाले जीवाणु कभी-कभी बच्चे के मूत्र-तंत्र पर आक्रमण कर देते हैं। स्ट्रैप थ्रोट के दो सप्ताह बाद बच्चे को तेज बुखार होकर टान्सिल बढ़ते हैं, गुर्दों में पीड़ा होती है, बच्चे के हाथ-पैरों और चेहरे पर सूजन आ जाती है, बच्चे को पेशाब बहुत कम आता है पेशाब का रंग गंदला या पेशाब में रक्त आ सकता है। नब्ज काफी तेज चलती है।

इन बच्चों को तुरन्त डाक्टर को दिखाना चाहिए क्योंकि इसमें पेनिसिलिन के इन्जेक्शन लगने जरूरी हैं तथा अन्य कई सावधानियां भीरख नी पड़ेंगी।

५. श्वसन संस्थान अर्थात् सीने के रोग

भारतवर्ष के निवासियों में सीने के रोग बहुत होते हैं। खांसी, ब्रांकाइटिस, दमा और निमोनिया आदि ये सब सीने के रोग हैं। अंग्रेजी में इन्हें श्वसन संस्थान के रोग (Respiratory diseases) कहा जाता है। ये रोग बच्चों से लेकर बूढ़ों तक को होते रहते हैं अतः इनकी रोकथाम और चिकित्सा के सम्बन्ध में प्रत्येक गृहस्थ को जानकारी रखनी चाहिए।

इन रोगों से बचने के लिए यह जरूरी है कि पहले हम अपने श्वसन संस्थान की रचना को थोड़ा-सा समझ लें।

श्वसन संस्थान की शुरूआत नाक से होती है। नाक में दो नथुने होते हैं जो एक पतली-लचीली उपास्थि (कार्टिलेज) द्वारा अलग किए रहते हैं। थोड़ी ऊपर जाकर ये दोनों नथुने एक होकर एक गोल कोठरी जैसी बन जाती है जो कि पीछे की तरफ घूम कर ग्रसनी (Pharynx) में खुलती है। इसे ही गला या हलक भी कहते हैं। ग्रसनी में तनिक-सा नीचे आवाज उत्पन्न करने वाली पेटी बनी होती है जिसे कंठ (Larynx) कहते हैं। इसे 'आदम का सेब' (Adam's apple) या टेंटुआ भी कहते हैं जो गर्दन में आगे की तरफ उभार के रूप में दिखाई देता रहता है। कंठ के अन्दर दो लचकीले वाक् तन्तु होते हैं। जब हम बोलने की कोशिश करते हैं तो पेशियों से इन तन्तुओं में खिचाव पैदा होता है जिससे इनके बीच में होकर जा रही वायु में कम्पन होकर ध्वनि या आवाज पैदा होती है। दोनों वाक् तन्तुओं के बीच में एक द्वार होता है जिसे घांटी (Glottis) कहते हैं। एक पत्तीनुमा ढक्कन जिसे एपिग्लाटिस (Epiglottis) कहते हैं घांटी की रक्षा करता है।

यह कंठ एक लम्बी श्वास नली (Trachea या wind pipe) से जुड़ जाता है। श्वांस नली की दीवारों में कार्टिलेज के छल्लों की एक लड़ी या श्रृंखला जैसी

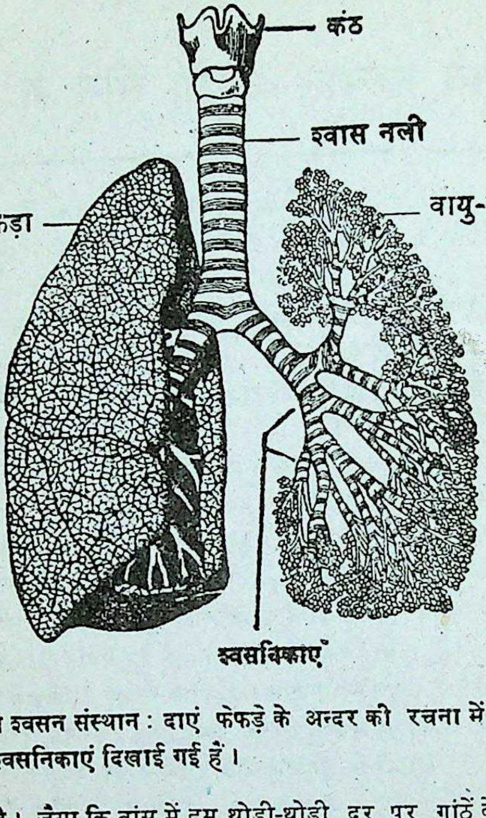

हमारा श्वसन संस्थान : दाएं फेफड़े के अन्दर की रचना में वायुकोश तथा श्वसनिकाएं दिखाई गई हैं।

बनी होती है। जैसा कि बांस में हम थोड़ी-थोड़ी दूर पर गांठें देखते हैं ऐसी ही रचना इसकी होती है। छाती के लगभग बीच में पहुंच कर श्वास नली दो शाखाओं—जिन्हें ब्रांक्स या श्वसनी कहते हैं—में बंट जाती है। दायां ब्रांक्स दाएं फेफड़े में और बायां ब्रांक्स बाएं फेफड़े में पहुंच जाता है। फेफड़े के अन्दर जाकर ब्रांक्स अनेक बारीक-बारीक नलियों में बंट जाते हैं जिन्हें ब्रांकियोल या श्वसनिकाएं कहते हैं। प्रत्येक ब्रांकियोल के अन्त में अंगूर के गुच्छे की तरह परन्तु अन्दर से खोखले वायु कोशों (वायु की थैलियां) का गुच्छा होता है। इन वायु कोशों की

दीवारें रबड़ जैसी होने के कारण फेफड़े में सांस लेते समय ये फूल जाती हैं और सांस छोड़ते समय पिचक जाती हैं। इन लाखों श्वसनिकाओं और वायु कोशों से मिलकर ही फेफड़ा बनता है। जब हम सांस लेते हैं तो वायु इन वायु कोशों में भर जाती है। हमारा रक्त इनमें से आक्सीजन ले लेता है और कार्बन डाई आक्साइड इनमें उड़ेल देता है। जब हम सांस छोड़ते हैं तो वायु कोशों से यह कार्बन डाई आक्साइड निकल कर वायु मंडल में मिल जाती है।

चिकित्सा में सुविधा की दृष्टि से इस श्वसन संस्थान के दो भाग कर दिए गए हैं (1) ऊपरी श्वसन क्षेत्र जो नाक से लेकर कंठ (Larynx) तक होता है और (2) नीचे का श्वसन क्षेत्र जिसमें श्वास नली, श्वसनिकाएं और वायु कोश सम्मिलित हैं।

आइए अब श्वसन संस्थान के कुछ रोगों के कारण और उपचार के सम्बन्ध में बातचीत करें।

खांसी

हमारे मुंह और गले में एक दर्जन के लगभग विभिन्न प्रकार के जीवाणु हर समय रहते हैं। इनमें से कुछ तो बड़े घातक रोग उत्पन्न करने वाले होते हैं जैसे डिफ्थीरिया और न्यूमोनिया आदि। ये जीवाणु जीवन भर मौजूद रहते हैं और अगर हम स्वस्थ रहते हैं तो ये हमें कोई हानि नहीं पहुंचाते परन्तु जब किसी कारण से अचानक हमारा स्वास्थ्य खराब होने लगे तो ये भी हमला बोल देते हैं और विभिन्न प्रकार के श्वसन संस्थान सम्बन्धी रोगों को जन्म दे देते हैं।

श्वसन संस्थान सम्बन्धी रोगों का सबसे पहला लक्षण खांसी के रूप में दिखाई देता है जो इस बात का संकेत है कि हमारी श्वास नलिकाओं अथवा फेफड़ों पर या तो किन्हीं जीवाणुओं ने हमला बोल दिया है अथवा श्वास नलिकाओं में कोई क्षोभ (Irritation) उत्पन्न करने वाली वस्तु पहुंच गई है और शरीर खांसी के माध्यम से इसको बाहर निकालना चाहता है।

हमारे मस्तिष्क की जड़ या ब्रेनस्टैम में हमारे शरीर की अनेकों महत्त्वपूर्ण क्रियाओं का संचालन करने वाले केन्द्र होते हैं। इनमें एक केन्द्र वह भी है जो शारीरिक ताप पर नियन्त्रण रखता है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण केन्द्र कफ केन्द्र

(Cough centre) है जो श्वास नलिकाओं में कोई हानिकारक पदार्थ पहुंचते ही खांसी पैदा कर देता है ताकि श्वास नलिकाएं साफ हो जाएं और हानिकर जीवाणु या बलगम फेफड़ों में न पहुंच सके।

जब हम शारीरिक रूप से कमजोर हो जाते हैं तो हवा में उड़ने वाले अथवा हमारे मुंह में हर समय पलते रहने वाले जीवाणु हमारे गले और श्वास नलिकाओं पर आक्रमण कर देते हैं। अगर यह आक्रमण हलका-सा है तो इन स्थानों की श्लेष्मीय झिल्ली पर थोड़ी-सी सूजन आ जाती है जिससे क्षोभ उत्पन्न होता है और कफ केन्द्र उत्तेजित होकर खांसी उत्पन्न करता है ताकि यह क्षोभ कारक वस्तु निकल जाए। चूंकि झिल्ली पर सूजन मामूली-सी होती है इसलिए फालतू श्लेष्म (बलगम) नहीं बनता अत: इस खांसी में बलगम नहीं निकलता। इसे सूखी खांसी कहते हैं।

अगर जीवाणुओं का आक्रमण गम्भीर है तो इन स्थानों की झिल्ली इनसे मुक्ति पाने के लिए अधिक मात्रा में श्लेष्म का उत्पादन करने लगती है। यह श्लेष्म या बलगम श्वास नलिकाओं में भर जाता है अत: इससे छुटकारा पाने के प्रयत्न में जो खांसी उठती है उसके द्वारा शरीर से यह बलगम बाहर फेंक दिया जाता है। यह बलगमी खांसी है। सूखी और बलगम खांसी का इलाज भी अलग-अलग है।

सूखी खांसी

सूखी खांसी हमेशा जीवाणुओं के आक्रमण से उत्पन्न होती हो ऐसी बात नहीं है। ज्यादा धूम्रपान करने से, बरसात में भीगने से ठण्ड लग जाने के कारण, सड़े-गले तेल का भोजन कर लेने से या अचार या चटनी या खट्टी वस्तुएं खा लेने से, धूल अथवा धुएं से भरे वातावरण में रहने से हमारे गले, श्वास नलिकाओं अथवा अन्न नलिका की श्लेष्मीय झिल्ली में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है जिससे सूखी खांसी बार-बार उठती है। सूखी खांसी से रोगी को बड़ा कष्ट होता है अत: तुरन्त इसकी ओर ध्यान देना चाहिए। इसका उपचार इस प्रकार करें—

- अगर बिना किसी स्पष्ट कारण के सूखी खांसी उठ रही है और आप धूम्रपान के आदी हैं तो आपको 'धूम्रपान करने वालों की खांसी' (Smoker's cough) है। सिगरेट छोड़ दीजिए खांसी स्वयं समाप्त हो जाएगी।

○ 'हाल्स', 'विक्स' की मेडीकेटेड कफ ड्राप्स या हमदर्द की 'सुआलीन' की टेब्लेट्स चूसें।

○ नींबू का रस और शहद बराबर मात्रा में मिलाकर रख लें। दिन में तीन-चार बार उंगली से यह चटनी थोड़ी-थोड़ी करके चाटते रहें। यह सर्दी की खांसी में अच्छा लाभ देती है।

○ तवे पर सुहागे की खील बनाकर पीस कर रख लें। एक ग्राम यह दवा शहद में मिला दिन में तीन बार उंगली से थोड़ी-थोड़ी चाटना चाहिए। इस दवा की बड़ी प्रशंसा की गई है। इससे पहले ही दिन सखी खांसी में आराम आ जाता है। गले की खराशें भी कम हो जाती हैं।

इन घरेलू उपायों से प्रायः दो-तीन दिन में खांसी से छुटकारा मिल जाता है। उपरोक्त उपचार व चूसने की गोलियों में केवल गले को चिकना और ठंडा रखने का गुण होता है। इन्हें औषधियां नहीं कहा जा सकता। अगर इससे खांसी दूर न हो तो सूखी खांसी रोकने में प्रभावशाली औषधियों का प्रयोग करें। डाक्टरी परिभाषा में ऐसी औषधियों को कासरोधी (Antitussive) कहा जाता है। ये औषधियां मस्तिष्क के कफ सेन्टर का दमन करती हैं अर्थात् उसे कार्य करने से रोक देती हैं अतः खांसी बन्द हो जाती है। कासरोधी औषधियां निम्नलिखित हैं—

• विक्स फार्मूला-44 की टेब्लेट्स। पैकेट पर दिए गए निर्देशों के अनुसार दिन में कई टेब्लेट्स चूसें।

○ स्ट्रेपसिल्स (Strepsils) की टेब्लेट्स चूसने से भी गले की खराशें और सूखी खांसी बन्द हो जाती है।

○ कासरोधी औषधियों में सबसे अधिक प्रभावशाली कोडीन है जो कि अफीम से निकाली जाती है। यह शारीरिक दर्दों को भी कम करती है। 'कोडीन फास्फेट टेब्लेट' नाम से इसकी 30 मिग्रा की टेब्लेट आती है। जरूरत के समय आधी टेब्लेट देने से ही खांसी कम हो जाती है तथा रोगी को नींद भी आ जाती है। 'कोडीन कम्पाउंड टेब्लेट आई० पी०' नाम से मिलने वाली टेब्लेट में ऐस्प्रिन व कैफीन के साथ ही कोडीन 8 मिग्रा मात्रा में मिली होती है। आवश्यकता के

समय इसकी एक या दो टेब्लेट खा लेने से खांसी भी शान्त होती है और शरीर में या सिर में दर्द अथवा बुखार भी हो तो वह भी कम हो जाता है।

० विभिन्न कम्पनियों ने अपने-अपने ट्रेड नाम स कोडीन युक्त खांसी के शर्बत भी निकाले हैं। फाइजर कम्पनी का कोरैक्स (Corex) नामक बड़ा जायकेदार शर्बत आता है। वयस्क व्यक्ति को इसका एक चाय के चम्मच भर तथा बच्चों को आधा चम्मच और 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों को 1/4 चाय का चम्मच देना चाहिए। इसके बढ़िया स्वाद के कारण प्रायः बच्चे थोड़ा ज्यादा पिलाने की जिद करने लगते हैं परन्तु यह उपरोक्त से अधिक मात्रा में हर्गिज न पिलाया जाये क्योंकि इसमें कोडीन होती है। इस शर्बत से खांसी कम होती है और नींद भी अच्छी आती है।

नोट—यदि रोगी को बलगमी खांसी हो या गले से कफ की घर-घराहट की आवाज आ रही हो तो कोडीन मिश्रित औषधि का सेवन न करें।

बलगमी खांसी

अगर खांसी के साथ बलगम निकलता है परन्तु बहुत कम मात्रा में निकल रहा है तो ऐसी दवाएं दी जाती हैं जो श्वास नलियों में एकत्रित बलगम को पतला कर दें ताकि खांसी के साथ यह आसानी से बाहर निकल जाए। ऐसी दवाओं को कफोत्सारक या ऐक्स्पेक्टोरेन्ट कहा जाता है। ये प्रायः शर्बत के रूप में होती हैं।

इन दवाओं में क्लोरप्रोमेजीन (Chlorpromazine) भी मिला होता है जिससे एलर्जी द्वारा उत्पन्न खांसी का दमन होता है। इसका मुख्य कार्य है श्वास नली को थोड़ा फैला देना ताकि बलगम जो श्वास नली में हो वह सुगमता से खांसी के साथ बाहर निकल जाए।

० ऐसी दवाओं में बेनाड्रिल ऐक्सपैक्टोरेन्ट (Benadryl Expectorant) बहुत प्रभावशाली सिद्ध हुआ है।

० अलेम्बिक कम्पनी की बनी हुई 'ग्लायकोडीन टर्प वसाका' सूखी और बलगमी दोनों तरह की खांसी के लिए बहुत जमाने से प्रसिद्ध घरेलू औषधि है जो बच्चों को भी दी जा सकती है। जब तक खांसी ठीक न हो जाए दिन में

3-4 बार एक-एक चाय का चम्मच दवा पीते रहें। सात-आठ दिन में खांसी जाती रहती है।

○ अलेम्बिक कम्पनी का जीट ऐक्स्पेक्टोरेन्ट (Zeet Expectorant) भी कफ को बाहर निकालता है। यह शर्बत दो चाय के चम्मच बड़ों को दिन में तीन-चार बार दें। बच्चों को एक चम्मच दें।

○ देशी दवाओं में बलगमी और सूखी दोनों प्रकार की खांसी के लिए पियाबांसा जिसे बांसा या काला बांसा भी कहते हैं एक श्रेष्ठ दवा है। इसका पौधा डेढ़-दो फुट तक ऊंचा और कांटेदार होता है। बांसे के हरे पत्तों को कूट कर उनका रस निकाल लें। जितना यह रस हो उतनी ही मात्रा में शहद या चीनी की गाढ़ी चाशनी मिलाकर रख लें। यह चटनी दिन में तीन-चार बार एक-एक चाय का चम्मच भर कर चटाएं। यह दवा बलगम निकाल कर सीने को साफ कर देती है।

○ यदि बलगमी खांसी के कारण रोगी बेचैन हो और उसे नींद नहीं आ रही हो तो नींद लाने के लिए 'वेलियम 5' या 'कामपोज' की 5 मिलीग्राम वजन वाली आधी टेब्लेट सोते समय पानी से खिला दें। यदि इसका पूरा प्रभाव न हो तो अगली रात से एक-एक टेब्लेट देना शुरू कर दें। इस दवा से अच्छी तरह नींद आ जाती है।

अथवा ○ मैक कम्पनी निर्मित थियोमैक (Theomac) की एक टिकिया रात को सोते समय देने से आराम मिलता है।

अथवा ○ सेडोनाल (Sedonal) की एक टिकिया रात को देने से रोगी को नींद भी आ जाती है तथा खांसी को भी आराम होता है। इसका सेवन दिन में नहीं करना चाहिए।

खांसी के सम्बन्ध में स्मरणीय बातें—

आम लोग खांसी की चिकित्सा के लिए विभिन्न प्रकार के शर्बतों और दवाओं का जरूरत से ज्यादा तथा अनावश्यक प्रयोग करते हैं। बहुत से कफोत्सारक कहे जाने वाले शर्बतों के नुस्खे में कोडीन जैसी औषधियां भी होती हैं जिनसे कफ और खुश्क हो जाता है। अतः अधिकांश खांसी के शर्बत विपरीत गुणों वाली

औषधियां मिली होने के कारण लाभ नहीं पहुंचाते, इनसे आर्थिक हानि ही होती है।

दोनों प्रकार की खांसी में पानी बड़ा काम करता है। दिन में कई बार गुनगुना करके पानी पिएं तथा पानी की भाप सूंघें (देखिए—**सर्दी-जुकाम**)। यह सरल घरेलू उपाय मंहगी-से-मंहगी दवा की अपेक्षा बेहतर है। इससे बलगम भी ढीला होकर निकल जाता है।

यदि खांसी काफी दिन तक रहे या खांसी में खून या बदबूदार बलगम आ रहा हो या व्यक्ति का वजन लगातार कम होता जा रहा हो तो तुरन्त डाक्टर को दिखाना चाहिए।

ब्रांकाइटिस

इस रोग में फेफड़ों में वायु ले जाने वाली नलिकाओं (ब्रांक्स) में सूजन आ जाती है। यह रोग बरसात में ज्यादा भीगे रहने, या ज्यादा देर तक ठण्ड खाते रहने के कारण उत्पन्न होता है। प्रारम्भ में इसके लक्षण जुकाम जैसे होते हैं। रोगी की नाक बहती है, सारे शरीर में हड़कल होती है, शरीर में ठण्ड महसूस होती है और प्रायः तेज बुखार भी हो जाता है। सिर में दर्द रहता है और सीना जकड़ा हुआ-सा मालूम पड़ता है। प्रारम्भ में बार-बार सूखी खांसी उठती है, सांस लेने में कष्ट होता है और बलगम बहुत कम निकलता है। यदि जीवाणुओं का आक्रमण हल्का ही है तो तीन-चार दिन में बलगम ढीला होकर खांसने पर काफी मात्रा में निकलने लगता है। इस समय रोगी समझता है कि उसे अब बलगमी खांसी हो गई है। वास्तव में बलगमी खांसी ब्रांकाइटिस का ही रूप है। साधारण बलगमी खांसी और ब्रांकाइटिस में अन्तर यह है कि बलगमी खांसी तो उपचार से ठीक हो जाती है और ब्रांकाइटिस का आक्रमण बार-बार होता रहता है। साधारणतः रोगी वर्ष में 8-9 महीने पूर्णतः रोग मुक्त रहता है परन्तु शीत ऋतु के आगमन के साथ ही लगभग तीन महीने तक ब्रांकाइटिस का रोगी बना रहता है। ब्रांकाइटिस दो प्रकार का होता है—

(1) एलर्जी के कारण उत्पन्न होने वाला।

(2) जीवाणुओं के कारण उत्पन्न होने वाला।

एर्लजिक ब्रांकाइटिस

इस रोग में बलगम बहुत चेपदार परन्तु सफेद रंग का होता है। बलगम बाहर निकालने के लिए रोगी को बहुत खांसना पड़ता है और कई बार देर तक खांसते रहने के कारण रोगी की सांस फूल जाती है और उसके बाद थोड़ा-सा सफेद रंग का बलगम निकलता है जो कभी-कभी होंठों या गाल पर चिपक जाता है तथा उंगली से उसे छुटाना पड़ता है। इनमें से कुछ रोगियों में एर्लजिक जुकाम के लक्षण जैसे कि बार-बार छींकें आना और नाक बहना भी देखे जाते हैं।

चिकित्सा—(1) सबसे पहले यह पता लगाने की कोशिश करनी चाहिए कि एलर्जी का कारण क्या हो सकता है। रोगी के निवास स्थान या कार्य स्थल के पास कल-कारखानों का धुआं तो ज्यादा नहीं उड़ता या कोई ऐसी फैक्ट्री तो नहीं है जिसमें से रासायनिक वाष्प उड़ती हो या उस क्षेत्र में लड़की के चीरने के कारखाने हों या वहां बहुत धूल उड़ती हो। यदि कोई ऐसा कारण पाया जाए तो रोगी को चाहिए कि वह कुछ दिनों के लिए उस स्थान से बाहर चला जाए। यदि नये स्थान पर उसे रोग से काफी राहत मिल जाए तो उसे पुराना स्थान छोड़ देना चाहिए।

(2) इन रोगियों को बर्फ का पानी तथा अन्य शीतल पेय नहीं सेवन करने चाहिए।

(3) धूम्रपान सदा के लिए त्याग देना चाहिए।

(4) इन रोगियों को प्रतिदिन 6-7 गिलास गर्म पानी पीना चाहिए। गर्म पानी से बलगम ढीला होकर पतला हो जाता है और देर तक खांसना नहीं पड़ता। कफोत्सारक औषधियों की अपेक्षा यह पानी रोगी को अधिक लाभ करता है।

संक्रमण जन्य ब्रांकाइटिस

इस रोग में एर्लजिक ब्रांकाइटिस से यह अन्तर है कि इसमें न्यूमोकाकस तथा हीमोफिलस इन्फ्लुऐंजी जाति के बैक्टीरिया श्वसन संस्थान की ब्रांक्स (Bronchs) पर आक्रमण कर देते हैं जिससे इनमें सूजन आ जाती है और

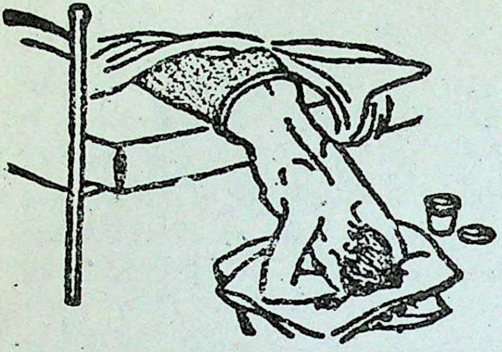

सीने में भरे हुए कफ को बाहर निकालने के लिए कफ निःस्सारक आसन।

अधिक मात्रा में बलगम का उत्पादन होने लगता है। यह बलगम पीले रंग का या हरियाली लिए हुए पीले रंग का होता और आसानी से निकल आता है। कई बार दिन-रात में मिल कर चौथाई से आधा लीटर तक कफ निकलने लगता है। खांसी के कारण पसलियों में दर्द रहने लगता है। अक्सर रोगी को हल्का-हल्का बुखार भी रहने लगता है। कुछ रोगियों में इतना बलगम बनने लगता है कि सीधे होकर लेट भी नहीं सकते। रात्रि में आधे लेटे जैसी स्थिति में इन्हें सोना पड़ता है तथा 3-4 बजे से कफ ज्यादा निकलने लगता है। इस प्रकार का ब्रांकाइटिस अधिकतर अधेड़ आयु के व्यक्तियों में उत्पन्न होता है। अधिक धूम्रपान करने वाले व्यक्ति इसके शिकार मुख्य रूप से होते हैं। हर वर्ष शीत ऋतु में रोग का आक्रमण होता है।

चिकित्सा—(1) यदि रोगी धूम्रपान का आदी है तो उसे धूम्रपान कतई और हमेशा के लिए बन्द कर देना चाहिए। धूम्रपान बन्द करते ही प्रायः रोगी को लाभ दिखाई देने लगता है।

(2) रोगी को श्वसन संस्थान को सक्षम बनाने वाले व्यायाम नियमित रूप से करते रहना चाहिए।

(3) रोगी को अपने बलगम का रंग देखते रहना चाहिए। शीत ऋतु में जैसे ही वह यह देखे कि बलगम का रंग सफेद की बजाये पीला हो गया है तो उसे समझ लेना चाहिए कि जीवाणुओं का आक्रमण हो गया है अतः तुरन्त ही उसे कोई

जीवाणुनाशक औषधि का सेवन शुरू कर देना चाहिए। इसके लिए उसे 'सेप्ट्रान' या 'बैक्ट्रिम' की दो टेब्लेट सुबह और दो शाम को एक सप्ताह तक सेवन करना चाहिए या टेट्रासाइक्लीन का 250 मिलीग्राम का एक-एक कैप्सूल 6-6 घण्टे बाद एक सप्ताह तक सेवन करना चाहिए। इन औषधियों का सेवन कराते ही रोगी का सीने या पसलियों का दर्द खत्म हो जाता है तथा ज्वर उतर कर रोगी स्वस्थ महसूस करने लगता है। बलगम सफेद रंग का होते ही औषधि बन्द कर देनी चाहिए।

(4) सीने में भारी मात्रा में एकत्रित कफ को बाहर निकालने के लिए रोगी को कफ नि:स्सारक आसन (Postual drainage) का प्रयोग करना चाहिए। इस आसन की विधि ऊपर चित्र में दिखाई गई है। रोगी खाट पर से नीचे इस प्रकार झुके कि उसकी बाहें जमीन पर टिक जाएं। बांहों के नीचे तकिया रख लेना चाहिए और इस तकिये पर बांहों के सहारे सिर टिका दिया जाता है। इस स्थिति में रहने पर रोगी को खांसी उठती है और बलगम श्वास नलिकाओं में से फिसल कर मुंह में आने लगता है। यदि कोई व्यक्ति इस समय रोगी की पीठ थपथपाता रहे तो बलगम और भी आसानी से निकलता है। इस बलगम को पास में रखे हुए शकोरे या कुल्हड़ में रखते जाना चाहिए। यदि उल्टी हो जाए तो उसे भी इस पात्र में रख लेना चाहिए। बाद में पात्र को फेंक दिया जाता है। यदि कफ बहुत गाढ़ा हो तो इस आसन को धारण करने से पूर्व टिंक्चर बेन्जोइन की वाष्प सूंघना चाहिए (देखिए 'जुकाम' रोग) या प्रारम्भ में कुछ दिनों तक एफेड्रीन हाइड्रोक्लोराइड की 30 मिलीग्राम की एक टेब्लेट आधा गिलास गर्म पानी से खाकर कुछ देर बाद कफ नि:स्सारक आसन का प्रयोग करना चाहिए। यह औषधि ब्रांक्स को फैला देती है अत: कफ ढीला होकर आसानी से निकल आता है।

कफ नि:स्सारक आसन प्रात:काल सोकर उठने पर और सायंकाल को भोजन करने से पहले करना चाहिए। सुबह करने से फालतू बलगम निकल जाने के कारण रोगी का दिन आराम से कट जाता है। सायंकाल को करने से सीना कफ मुक्त हो जाने से रात्रि में बार-बार खांसी उठ कर नींद में बाधा नहीं डालती। इस प्रकार रोजाना सुबह और शाम कफ निकालते रहना चाहिए।

फुफ्फुसों का एम्फीसीमा

ब्रांकाइटिस अथवा अस्थमा अधिक समय तक रहने पर बार-बार खांसने के कारण पड़ने वाले दबाव से फुफ्फुसों के वायुकोश फैलकर बड़े हो जाते हैं जिसके कारण इनकी दीवारें पतली पड़ जाती हैं और इनमें आने वाली रक्त कोशिकाएं (Capillaries) टूट-फूट कर समाप्त हो जाती हैं जिसके कारण फेफड़ों को समुचित मात्रा में आक्सीजन नहीं मिल पाता। इसके फलस्वरूप रोगी को श्वास कष्ट रहने लगता है। जरा से चलने या शारीरिक परिश्रम करने पर सांस फूल जाना, ठण्डे मौसम में श्वास कष्ट और खांसी विशेष रूप से बढ़ जाना इसके फलस्वरूप होते हैं। फुफ्फुस कमजोर हो जाने के कारण इनके श्वसन संस्थान में जल्दी-जल्दी जीवाणुओं का संक्रमण हो जाता है जिससे बार-बार ब्रांकाइटिस होकर फुफ्फुसों में बलगम का अधिक निर्माण होता है। यह बलगम श्वास नलिकाओं में भरे रहने के कारण सांस लेते समय सांय-सांय (Wheezing) की आवाज आती है जिसे बिना स्टेथिस्कोप के भी सुना जा सकता है। खांसी के कारण हृदय पर दबाव पड़ने से हृदय कमजोर हो जाता है।

सामान्य प्रबन्ध और चिकित्सा—चूंकि यह रोग अधिकतर अधेड़ अवस्था में होता है और ब्रांकाइटिस कुछ दिनों रहने पर भी एम्फीसीमा थोड़ा बहुत हो ही जाता है अतः इन रोगियों का इलाज ब्रांकाइटिस की तरह होता है। स्मरण रखना चाहिए कि एक बार एम्फीसीमा हो जाने पर किसी भी उपचार से विस्तृत हुए वायु कोशों को सामान्य रूप में नहीं लाया जा सकता परन्तु रोगी को श्वसन संस्थान को सक्षम बनाने वाले व्यायाम करते रहना चाहिए ताकि श्वास कष्ट कम रहे। ज्यादा सर्दी या कोहरे में बाहर नहीं निकलना चाहिए। इन लोगों को धूम्र-पान कतई तौर पर बन्द कर देना चाहिए। कफ निःस्सारक आसन का प्रयोग करते रहना चाहिए।

इन लोगों को यह ध्यान रखना चाहिए कि जैसे ही बलगम पीले रंग का हो जाए तुरन्त इन्हें पीछे ब्रांकाइटिस में बताई गई किसी जीवाणुनाशक औषधि जैसे कि सेप्ट्रान या टेट्रासाइक्लीन का एक सप्ताह का कोर्स कर लेना चाहिए। बलगम सफेद होने पर औषधि का सेवन बन्द कर दें।

जाड़ों के तीन-चार महीने में इन्हें तीन-चार बार इन औषधियों का कोर्स करना पड़ सकता है। यह उपचार शायद जीवन भर चलाना पड़ेगा।

इन लोगों को कोई ऐसी औषधि अपने पास रखनी चाहिए जिसमें ब्रांक्स को फैलाने वाली कोई औषधि (Broncho-dilators) जैसे कि ऐफेड्रीन मिली हो ताकि ब्रांकाइटिस का दौरा पड़ने पर उस औषधि का सेवन करने से बलगम ढीला होकर आसानी से निकल जाए। ऐसी पचासों औषधियां हैं। इनमें कैडिला कम्पनी का बना हुआ कैडीफायलेट एलिक्जिर (Cadyphylate Elexir) काफी लोकप्रिय है। ब्रांकाइटिस का दौरा पड़ने पर दो चाय के चम्मच यह शर्बत पी लेने से कष्ट कम हो जाता है। डाक्टर इस प्रकार की और भी कई औषधियां बता सकता है।

नोट—(1) ब्रांकाइटिस तथा एम्फीसीमा के रोगियों को शैय्या रूढ़ होकर विश्राम करने का आदी नहीं होना चाहिए बल्कि हल्का-फुल्का कोई चलने-फिरने का काम करते ही रहना चाहिए। लेट कर आराम करने की आदत डाल लेने से इनको श्वास कष्ट बढ़ जाता है।

(2) इन दोनों रोगों के रोगियों को किसी एक अनुभवी तथा योग्य चिकित्सक का चुनाव करके उसी की सलाह पर चलना चाहिए। प्राय: जाड़ों के मौसम में इन रोगियों को कुछ जटिलताएं उत्पन्न हो जाती हैं जिनसे ये लोग घबराकर कभी किसी डाक्टर के पास और कभी के किसी पास भागते रहते हैं जिससे इन्हें बहुत आर्थिक हानि होती है। पहली बात तो यह कि कोई भी डाक्टर इन दोनों रोगों को जड़ से समाप्त नहीं कर सकता। दूसरी बात यह कि प्रत्येक डाक्टर इनको कष्ट से मुक्ति दिलाने के लिए जो भी औषधि तजवीज करेगा उसमें ब्रांक्स को फैलाने का गुण रखने वाली एफेड्रीन प्राय: अवश्य होगी लेकिन हर डाक्टर किसी दूसरी कम्पनी की पेटेन्ट औषधि बताएगा। इसका फल यह होगा कि पहले डाक्टर की बताई हुई औषधि रोगी के यहां बेकार चली जाएगी और उसे नए डाक्टर की बताई हुई औषधि बाजार से खरीदनी होगी जबकि इसका फार्मूला लगभग वही होगा जो पिछली औषधि का था। इस प्रकार धन की बर्बादी होती है।

इयोसिनोफीलिया

यह एक चक्करदार रोग है जो अक्सर चिकित्सकों की पकड़ में भी नहीं आता। इसके रोगी को हल्की-हल्की हरारत बनी रहती है, सूखी खांसी और दम फूलने के लक्षण होते हैं। चिकित्सक लोग खांसी की दवा देते रहते हैं परन्तु कोई लाभ नहीं होता। कुछ रोगियों में इस रोग का कारण यह होता है कि उनके रक्त में इयोसिनोफिल नामक सफेद कणों की संख्या बहुत बढ़ जाती है।

जिन रोगियों को बहुत दिनों तक खांसी बनी रहे अथवा सन्देह हो कि दमा शुरू होने वाला है उन्हें अपने रक्त की परीक्षा करवा लेनी चाहिए। यदि लेबोरेट्री की रिपोर्ट हो कि इयोसिनोफिल्स बहुत अधिक संख्या में अर्थात् 20 प्रतिशत से अधिक बढ़ गए हैं तो उन्हें समझ लेना चाहिए कि वे इयोसिनोफीलिया के रोगी हो गए हैं।

इस रोग की चिकित्सा डाक्टर से ही करानी चाहिए। इसके लिए एक विशिष्ट औषधि डाईएथिल कार्बामिजिन है जो हेट्राजान (Hetrazan) व्यापारिक नाम से बिकती है। इसकी 50 मिग्रा० की दो-दो टेब्लेट दिन में 3 बार तीन-चार सप्ताह तक देने से ही इयोसिनोफिल्स की संख्या घट कर सामान्य हो जाती है तथा रोगी रोग मुक्त हो जाता है। इस रोग के उपचार के लिए यह अत्यन्त ही सुरक्षित औषधि है जिसका कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता। यदि इस औषधि से लाभ न हो तो किसी अनुभवी वैद्य या डाक्टर की निगरानी में संखिया (Arsenic) मिली औषधि लम्बे समय तक सेवन करना चाहिए। संखिया युक्त औषधियां इस रोग को निश्चित और स्थायी तौर पर नष्ट कर देती हैं।

दमा या अस्थमा

हम पीछे बता चुके हैं कि श्वास नलिकाओं या ब्रांक्स की रचना बांस की तरह गांठदार होती है। जिस प्रकार बांस में थोड़ी-थोड़ी दूर पर गांठें होती हैं उसी प्रकार इन नलियों में भी थोड़ी-थोड़ी दूर पर मांस-पेशियों की बनी हुई गांठें या छल्ले जैसे होते हैं। दौरा पड़ने के समय ये छल्ले सुकड़ कर छोटे हो जाते हैं जिसके

कारण रोगी को सांस बाहर निकालने में कष्ट होता है और गला सांय-सांय करता है। स्मरण रखना चाहिए कि रोगी को सांस अन्दर लेने में कष्ट नहीं होता।

कारण—कुछ लोगों के शरीर की गठन ही ऐसी होती है जिसके कारण इनको अस्थमा जैसे रोग हो सकते हैं। कुछ परिवारों में यह रोग पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है। दमे का रोग किसी भी अवस्था में लग सकता है परन्तु आमतौर पर इसका पहला आक्रमण चौदह-पन्द्रह वर्ष की आयु में ही हो जाता है। दमा के रोगी प्रायः भावुक, तनिक-सी बात पर नाराज हो जाने वाले और बुद्धिमान होते हैं। दमा के रोगी पुरुष ज्यादा होते हैं, स्त्रियां बहुत कम।

दमा होने के अनेकों कारण हो सकते हैं। जिन बच्चों को मां-बाप का समुचित लाड़-प्यार नहीं मिलता वे भी इसका शिकार हो जाते हैं। कुछ व्यक्तियों को इयोसिनोफीलिया के कारण दमा हो जाता है और चिरकारी (पुराना) ब्रांकाइटिस भी दमे का रूप ले लेता है। आजकल ऐसी मान्यता है कि दमा एलर्जी (Allergy) के कारण होता है। कुछ स्थानों की वायु में विशेष प्रकार की रसायनों, घासफूंस या अन्य पदार्थों के कण तैरते रहते हैं जो श्वसन संस्थानों की श्लेष्म झिल्ली के सम्पर्क में आने पर झिल्ली में प्रतिक्रिया के फलस्वरूप शोथ उत्पन्न हो जाता है जो दमे का कारण बन जाता है। मूर की 'फेमिली मेडीसिन' पुस्तिका में एक ऐसे रोगी का उदाहरण दिया गया है जो जिस समय कानपुर नगर में प्रवेश करता था तो उस पर दमे का आक्रमण हो जाता था परन्तु कानपुर शहर की सीमा से केवल एक मील बाहर ही वह जितने दिनों रहता था उसको दमे का दौरा नहीं पड़ता था। कुछ खाने-पीने की वस्तुएं भी एलर्जी पैदा करती हैं। और भी पचासों कारण हो सकते हैं।

कारण जो कुछ भी हो इतना तो स्पष्ट है कि दमा उन लोगों को ही ज्यादा होता है जिन्हें बचपन से ही फल, हरे साग और पौष्टिक भोजन समुचित मात्रा में नहीं मिला है। कम उम्र में ही बीड़ी-सिगरेट की लत लग जाने से भी दमा हो सकता है। फेफड़े कमजोर हो जाना ही दमा का मुख्य कारण है।

लक्षण—दमे का दौरा प्रायः रात्रि में ही आरम्भ होता है परन्तु कभी-कभी दिन में भी पड़ सकता है। कुछ लक्षण जैसे शरीर में बेचैनी, सुस्ती, नाक या ठोड़ी में खुजली, भूख में कमी या पेट अफरना आदि पहले से उत्पन्न होने लगते हैं। जिससे रोगी को आभास हो जाता है कि शीघ्र दौरा पड़ने वाला है। आमतौर

से रोगी नींद से उठ जाता है, उसे अपना दम घुटता हुआ और सीना कसा हुआ-सा मालूम होता है। रोगी खिड़कियां खोलकर दोनों हाथ उठा लेता है ताकि ज्यादा-से-ज्यादा हवा सीने के अन्दर आ जाए। सांस लेने व छोड़ने में कष्ट होता है, सांस जल्दी लेता है परन्तु सांस निकालने में ज्यादा देर लगती है। सांस लेने व छोड़ने में सांय-सांय की आवाज रोगी से दूर बैठे आदमी को भी सुनाई दे जाती है। रोगी का चेहरा नीला या पीला पड़ जाता है और बड़ा घबराया हुआ होता है। गले की शिराएं (Veins) फूल जाती हैं और पसीना भारी मात्रा में आने लगता है।

दौरे के अन्त में थोड़ा-सा कफ निकलता है जिसमें उबले हुए साबूदाने की तरह नन्हीं-नन्हीं गोलियां जैसी होती हैं। कफ निकलना शुरू होने पर दौरे की तेजी शान्त हो जाती है और जब कफ निकल चुकता है तो दौरा शांत हो जाता है। प्रायः रोगी को बड़ी मात्रा में पीले रंग का पेशाब आता है और इसके बाद रोगी सुबह तक चैन से सोता है।

दमे का दौरा कुछ मिनटों से लेकर कुछ घण्टों तक जारी रह सकता है। अक्सर ऐसा होता है कि कुछ हफ्तों तक प्रत्येक रात्रि में एक ही समय पर दौरा उठता है उसके बाद कुछ हफ्तों या महीनों तक बिल्कुल नहीं पड़ता। दमे का दौरा बार-बार पड़ते रहने से रोगी को 'एम्फीसीमा' रोग हो जाता है जिसमें फेफड़े के अन्दर हवा की थैलियां फैल कर बड़ी हो जाती हैं।

रोकथाम के उपाय—केवल दवाओं के बल पर दमे के दूर कर देने की आशा करना बेकार है अतः पहली बार दमे का दौरा पड़ते ही सचेत हो जाना चाहिए और सबसे पहले स्वास्थ्य सुधारना चाहिए। धूम्रपान बिल्कुल बन्द कर देना चाहिए। बिना धूम्रपान बन्द किए दमा नहीं जा सकता यह स्मरण रखें। रोटी के साथ प्रतिदिन हरी पत्तों वाले साग काफी मात्रा में खाने चाहिए। टमाटर और गाजर आदि का सलाद बना कर रोजाना खाना चाहिए। रात्रि का भोजन हल्का होना आवश्यक है। थोड़ा हल्का-फुल्का व्यायाम नियमित रूप से करना चाहिए। प्रतिदिन मौसम का फल जरूर खाना चाहिए। प्रतिदिन खुली हवा में टहलना चाहिए और थोड़ी-बहुत देर तक के लिए धूप भी शरीर को लगने देना जरूरी है। रोजाना मल्टी विटामिन टेब्लेट लेते रहें। प्राकृतिक चिकित्सा से लगभग सब रोगी ठीक हो जाते हैं अतः प्राकृतिक चिकित्सा की कोई अच्छी पुस्तक मंगा कर लाभ

उठा सकते हैं। डाक्टर ऐडविन फ्लैंटो की पुस्तक **'मेडीकल व्यायाम'** तथा कविराज शिवगोविन्द त्रिपाठी आयुर्वेदाचार्य की पुस्तक **'यौगिक चिकित्सा'** में दमा के पुराने रोगियों के लिए कुछ स्पेशल व्यायाम दिए गए हैं। ये दोनों पुस्तकें मेडीकल प्रेस 720, शाहदरा, दिल्ली-32 से मंगवा सकते हैं। इन योगासनों पर आधारित हल्के-फुल्के व्यायामों को नित्य प्रति करते रहने से शारीरिक स्वास्थ्य तो सुधरता ही है, फेफड़े विशेष रूप से स्वस्थ बन जाते हैं जिससे ब्रांकाइटिस और दमा रोग में बहुत राहत मिलती है।

चिकित्सा—आजकल डाक्टरी चिकित्सा में अनेकों चमत्कारी औषधियां व इन्जेक्शनों का आविष्कार हो चुका है अतः दमा के रोगियों को अब पहले की तरह कष्ट नहीं उठाने पड़ते। दमा के रोगी को किसी अनुभवी डाक्टर या बड़े सरकारी अस्पताल में अपने रोग की चिकित्सा करानी चाहिए और बराबर अपने डाक्टर से सम्पर्क बनाए रखना चाहिए ताकि जरूरत के समय तुरन्त उसकी सहायता ली जा सके।

दमे की चिकित्सा में मुख्यतः ऐसी दवाएं दी जाती हैं जो दौरा न पड़ने दें और अगर दौरा पड़ भी जाए तो शीघ्र ही रोगी को इससे मुक्ति मिल जाए। दमे की चिकित्सा में मूल रूप में जो औषधियां प्रयोग की जाती हैं वे ब्रांकोडाइलेटर्स कहलाती हैं। इनका सेवन कराने के कुछ मिनटों बाद ही औषधि अपना प्रभाव दिखाने लगती है। रोगी की ब्रांक्स (श्वास नलियां) फैल जाती हैं जिससे फेफड़ों में श्वास अच्छी तरह आने-जाने लगता है और कफ ढीला होकर निकल जाता है। औषधि चाहे किसी भी नाम की या किसी भी कम्पनी की हो उसका मूल प्रभाव यही होता है।

दमे के उपचार को दो भागों में रखा जा सकता है—एक भाग दमे के दौरे के समय उपचार का है और दूसरा भाग दो दौरों के दरम्यान उपचार और रोकथाम के उपायो से सम्बन्ध रखता है।

दौरा पड़ने पर रोगी प्रायः उठकर बैठ जाता है अथवा खड़ा होकर किसी सहारा देने वाली वस्तु को इस प्रकार पकड़ लेता है जैसे उसे अपने श्वसन संस्थान की पेशियों को ताकत के साथ प्रयोग करके श्वास लेने में आसानी हो जाएगी।

दमे का दौरा शुरू हो जाने पर एफेड्रीन हाइड्रोक्लोराइड की 15 मिलीग्राम वाली एक या दो टेब्लेट पानी के साथ खा लेने से हल्का दौरा तुरन्त टल जाता है क्योंकि यह श्वास नलिकाओं को फैला देता है। जरूरत हो तो चार टेब्लेट्स तक एक बार में दी जा सकती हैं। चार घण्टे बाद दोबारा इसकी खुराक ली जा सकती है। परन्तु इस दवा के सेवन से कुछ रोगियों के दिल की धड़कन बढ़ जाती है अतः कुछ नई प्रभावशाली औषधियां निकली हैं जिनमें यह दुर्गुण नहीं होता। इन दवाओं में सबसे अच्छी सालब्यूटामोल है जो ऐस्थालिन टेब्लेट् (Asthalin tablets) तथा ब्रान्कोटैब (Broncotab) व्यापारिक नामों से बिकती है। इसकी चार मिलीग्राम वाली टेब्लेट लेना चाहिए। दमे का दौरा पड़ने को हो उसी समय एक टेब्लेट खा लेना चाहिए। अगर जरूरत हो तो 4-4 घण्टे बाद एक-एक टेब्लेट और खा लेनी चाहिए।

दमा की चिकित्सा के लिए पेटेन्ट औषधियों में टेडराल (Tedral) बहुत प्रसिद्ध है। इसमें ऐफेड्रीन के साथ ही थियोफायलीन तथा फेनोबार्बीटोन भी मिले होते हैं। इस औषधि से श्वास कष्ट दूर होता है तथा रोगी को नींद भी आती है। दवा का प्रभाव 15 मिनट में आरम्भ हो जाता है और चार घण्टे तक बना रहता है। दमे का दौरा पड़ने पर दवा की एक या दो टेब्लेट पानी या दूध से खा लेनी चाहिए। जरूरत हो तो चार घण्टे बाद दूसरी खुराक ली जा सकती है।

उपरोक्त दवाएं दमे के साधारण दौरों के लिए हैं। यदि दमे का दौरा गम्भीर रूप से पड़ा है तो इसके लिए एड्रीनलिन (Adrenaline) का इन्जेक्शन लगाना जरूरी हो जाता है। इससे तुरन्त राहत मिलती है। एड्रीनलिन के ऐम्पूल में एक मिलिलिटर दवा होती है। दौरे के समय आधा ऐम्पूल ($\frac{1}{2}$ मिलिलिटर) का इन्जेक्शन लगाना काफी रहता है। यदि इससे आराम न आए तो आधे घण्टे बाद दूसरी और दो घण्टे बाद तीसरी खुराक दी जा सकती है। तीसरी खुराक के बाद और न दें। यदि पहला इन्जेक्शन लगाने के बाद नब्ज की प्रति मिनट में 30 से अधिक धड़कन बढ़ जाएं तो दूसरी खुराक न दें।

एड्रीनलिन के सेवन के सम्बन्ध में दो बातों का ध्यान रखें। एक तो यह कि खुराक (मात्रा) उपरोक्त से अधिक न लें। दूसरी बात यह कि यह इन्जेक्शन इस प्रकार लगाया जाता है कि दवा केवल त्वचा के नीचे और मांस पेशी के ऊपर

के भाग यानी इन दोनों के बीच के स्तर में पंहुचे। इस स्तर को सबकुटेनियस (S. C.) कहते हैं। यदि दवा का इन्जेक्शन भूल से मांस पेशी में अथवा शिरा (Vein) में लग गया तो रोगी का ब्लड प्रैशर एकदम बढ़कर उसके लिए प्राण लेवा हो सकता है। अत: दमे के रोगियों को किसी डाक्टर से सही स्थान में इन्जेक्शन लगाने की तरकीब भलीभांति समझकर ही स्वयं लगाने का प्रयत्न करना चाहिए।

यदि किसी रोगी को दमे का दौरा लगातार तीन दिन से ज्यादा रहे, उसे ज्वर भी हो और उसका बलगम गाढ़ा तथा पीला हो जाए तो इसका अर्थ यह है कि उसके बलगम में संक्रमण मौजूद है अत: इसके इलाज के लिए उसे कोई एन्टी-बायोटिक जैसे कि टेट्रासाइक्लीन के कैंपसूल सेवन कराने चाहिएं (मात्रा आदि 'ब्रांकाइटिस' के अन्तर्गत देखें)।

दमे का दौरा शांत करने के लिए धतूरे का प्रयोग बहुत जमाने से होता आ रहा है और वास्तव में यह तुरन्त ही लाभ पहुंचाता है। कुछ लोग धतूरे की पत्तियों को सिगरेट की तरह लपेटकर सुखा कर रख लेते हैं। जैसे ही यह आभास हो कि दमे का दौरा पड़ने वाला है अथवा दौड़ा पड़ना शुरू ही हुआ हो तो इसे जलाकर सिगरेट की तरह इसका धुआं पीते हैं। इससे दौरा तुरन्त शान्त हो जाता है। दमा के नये रोगियों को पहले इसका थोड़ा-सा धुआं पीकर देख लेना चाहिए, यदि लाभ मालूम हो तो अधिक पीना चाहिए अन्यथा नहीं क्योंकि धतूरा एक प्रकार का जहर है। **जिन रोगियों को दौरों के बीच की अवधि में अधिक कफ आता रहता हो तथा ब्रांकाइटिस हो उन्हें धतूरे का धुआं नहीं पीना चाहिए। धतूरे की सिगरेट का धुआं मुंह से ही निकालना चाहिए, साधारण सिगरेट की तरह नाक से नहीं।**

दमा के इलाज के लिए कई अनुभव पूर्ण देसी दवाओं के नुस्खे मेडीकल प्रेस दिल्ली-32की पुस्तक "55 चमत्कारी जड़ी बूटियां" में दिए गए हैं।

दमा की चिकित्सा में होम्योपैथी की कुछ द्रवाएं बहुत अच्छा काम करती हैं। इन सस्ती दवाओं को अवश्य आजमाना चाहिए।

दमे की सर्वोत्तम देसी दवा

इस दवा का नुस्खा भारत प्रसिद्ध वैद्यराज पंडित रामनारायण शर्मा (वैद्यनाथ भवन वाले) ने अपनी पुस्तक में लिखा है। एक रत्ती संखिया में 15 रत्ती खाने का

सोडा खरल में अच्छी तरह घोटकर 16 पुड़िया बांध लें। एक पुड़िया सुबह और एक शाम को पानी के साथ या मलाई के साथ मिलाकर खिलायें। रोगी को अनुकूल होने पर 16 पुड़िया की जगह 8 पुड़िया ही बना सकते हैं। शीत ऋतु में दमा के रोगी को 40 दिन या 60 दिन यह दवा खिलाएं। रोगी को उसकी पाचन शक्ति के अनुसार देशी घी भी पिलाना चाहिए। दवा बनाते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि दवा अच्छी तरह आपस में मिल जाए। ऐसा न हो कि संखिया ठीक से न मिल पाने के कारण किसी पुड़िया में ज्यादा मात्रा में हो जाए और रोगी प्राण त्याग कर जाए।

वैद्य जी लिखते हैं—"मेरे अनुभव में दमा में स्थायी लाभ पहुंचाने वाली इससे उत्तम दवा अभी तक नहीं आई है। इस दवा को सेवन करा कर और साथ में रोगी का आहार-विहार ठीक कर मैंने कई दमा के रोगियों को ठीक किया है।"

उपचार का दूसरा भाग रोकथाम के उपायों से सम्बन्ध रखता है। इस विषय में पीछे लिखा जा चुका है। कुछ रोगियों को किसी अन्य नगर में जाकर बस जाने से जलवायु परिवर्तन के कारण लाभ होता देखा गया है। एक ही नगर में कुछ दूर दूसरे मोहल्ले में चले जाने से भी लाभ हो सकता है। यदि सम्भव हो तो सबसे पहले उपरोक्त जलवायु परिवर्तन का प्रभाव ही रोगी को देखना चाहिए। इन रोगियों को भोजन सादा लेना चाहिए; अचार चटनी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इन लोगों को सदैव हल्के पेट रहना चाहिए। इनको अपने भोजन में भी परिवर्तन करके देखना चाहिए क्योंकि हो सकता है कि वे अपने भोजन में कोई ऐसी वस्तु ले रहे हों जो शरीर को माफिक न बैठ रही हो। उदाहरण के लिए कुछ लोगों को अण्डा माफिक नहीं बैठता और एलर्जिक लक्षण जैसे कि दमा, खुजली आदि उत्पन्न करता है।

यदि आपको श्वसन से सम्बन्धित कोई रोग है
या इन रोगों से बचे रहना चाहते हैं तो
धूम्रपान छोड़ दीजिए

६. दांतों के रोग

दांतों के रोग उन्हीं व्यक्तियों में ज्यादा होते हैं जो रोजाना नियमपूर्वक दांतों को साफ नहीं करते। जैसा कि हम पीछे बता चुके हैं हमारे मुंह में बहुत-सी जातियों के रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु (बैक्टीरिया) रहते हैं। हम जो भोजन करते हैं उसके बहुत नन्हें-नन्हें कण दांतों के बीच में फंसे रह जाते हैं। मुंह के जीवाणु इन भोजन के कणों पर आक्रमण कर देते हैं जिनमें दांतों के आस-पास सड़ांध या फरमन्टेशन क्रिया होने लगती है जिससे अम्ल उत्पन्न होता रहता है। यह अम्ल धीरे-धीरे दांतों पर जमे हुए चूने को घोल कर खाता रहता है फलस्वरूप मसूढ़ों और दांतों में गहरा गड्ढा बन जाता है।

यहां तक तो कोई विशेष समस्या सामने नहीं आती परन्तु यहां से आगे दांतों के कष्टदायक रोग उत्पन्न होने लगते हैं। इन गड्ढों में भोजन के कण फंस जाते हैं। यह जीवाणुओं के लिए उत्तम आहार होता है तथा इस पर जीवाणु पलने तथा बढ़ने लगते हैं और बदबूदार पीप उत्पन्न करने लगते हैं।

जीवाणुओं के विष से मसूढ़े रोगग्रस्त होकर फूल जाते हैं और यह पीप दांतों की जड़ तक पहुंच जाती है जिससे दांत ढीले हो जाते हैं। इसे 'पायरिया' कहा जाता है। इस रोग में पीप के कारण मुंह से बदबू आती है और मसूढ़ों से रक्त निकलता रहता है।

पायरिया की चिकित्सा—रोगी को अपने स्वास्थ्य को सुधारना चाहिए और ऐसा सन्तुलित और पौष्टिक भोजन करना चाहिए जिससे विटामिन C और D प्रचुर मात्रा में मिलें। पायरिया किसी भी मंजन या किसी भी टूथ पेस्ट से नहीं जाता, भले ही उसकी कितनी तारीफ उसके बनाने वालों ने की हो। पुस्तकों में पायरिया नाशक जो शर्तिया और रामबाण नुस्खे होते हैं उनसे कोई लाभ नहीं होता। रोगी को चाहिए कि किसी अच्छे टूथ पेस्ट द्वारा ब्रुश से सुबह और

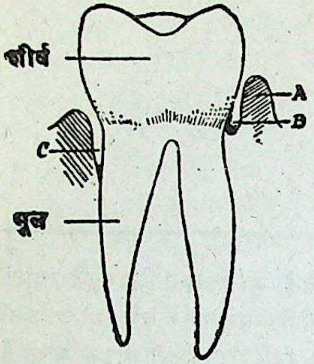

पायरिया में जीवाणुओं के आक्रमण से मसूढ़े (A) फल कर लाल हो जाते हैं। फिर ये ढीले हो जाते हैं जिससे गड्ढे (B) बन जाते हैं जिनमें भोजन के कण फंस कर सड़ते रहते हैं। जीवाणु मसूढ़ों को भी खाते रहते हैं जिससे मसूढ़ छोटे होकर नीचे बैठ जाते हैं जिससे दांत की नाजुक जड़ अर्थात् मूल (C) नंगी हो जाती है।

रात्रि का खाना खाने के बाद दांत नियमित रूप से साफ करते रहें। ब्रुश करते समय ब्रुश को ऊपर के दांतों में ऊपर से नीचे को और नीचे के दांतों में नीचे से ऊपर को ले जाना चाहिए ताकि दांतों के बीच में भोजन के फसे हुए कण निकल जाएं। यही ब्रुश करने की सही टेकनीक है। देशी मंजन बहुत बारीक पिसे हुए नहीं होते इसलिए मसूढ़ों को छील देते हैं। रोगी को चाहिए कि सुबह और शाम पानी में तनिक-सी लाल दवा (पोटेशियम परमेंगनेट) मिलाकर इससे अच्छी तरह कुल्ले करे। यह दवा जीवाणुनाशक है। दिन में एकाध बार उंगली पर तनिक-सा सरसों का तेल लगाकर आहिस्ता-आहिस्ता मसूढ़ों की मालिश करें ताकि मसूढे स्वस्थ बने रहें। सरसों के तेल में नमक मिलाकर मंजन हर्गिज न करें यह मसूढ़ों को छील देगा। दिन में एक-दो बार फिटकरी मिले पानी से कुल्ले करने से मसूढ़े मजबूत बनते हैं अथवा बबूल की छाल को पानी में उबाल कर रख लें। इससे एक-दो बार कुल्ले करते रहने से भी मसूढ़े मजबूत बनते हैं। यह प्रोग्राम लम्बे अरसे तक करते रहने से पायरिया चला जाता है।

जिन रोगियों के मसूढ़ों से पीप आती हो उन्हें कोई एन्टीबायोटिक औषधि अवश्य सेवन कराना चाहिए। इनको टेट्रासाइक्लीन का 250 मिग्रा का एक-एक कैप्सूल दिन में चार बार देना चाहिए। इससे पीप उत्पादक जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। साथ ही इन्हें रोजाना विटामिन 'सी' की टिकियां जैसे कि 'सीलिन' उचित मात्रा में सेवन करते रहना चाहिए।

दांतों में कीड़ा लगना

बहुत से लोग यह समझते हैं कि दांत में लगने वाला कीड़ा कोई ऐसा कीड़ा होता है जिसे हम आंखों से देख सकें। यह भूल है, दरअसल दांतों में कभी भी और कोई भी कीड़ा पैदा नहीं होता। दांतों के जीवाणु ही नुकसान पहुंचाते हैं और ये इतने सूक्ष्म होते हैं कि आंख से उन्हें देखना असम्भव है।

जैसा कि ऊपर बता चुके हैं दांतों की सफाई न रखने से मुंह के जीवाणु दांतों और मसूढ़ों के बीच फंसे भोजन के कणों को खाते रहते हैं और अम्ल व पीप बनाते रहते हैं। हमारे दांत सही पूछा जाए तो चूने (कैल्शियम) के बने हुए हैं और अम्ल (एसिड) चूने को गला देता है। यह अम्ल पहले दांत के सबसे कठोर भाग अनेमल को गलाता है, फिर डैन्टीन को खाने लगता है। जब डैन्टीन को भी खा जाता है तो यह दांत के अन्दर के गूदे में पहुंच जाता है जहां तन्त्रिकाएं (नर्वस या स्नायु) तथा दांतों को रक्त पहुंचाने वाली रक्तवाहिनियां होती हैं। फल यह होता है कि दांत के ऊपर का कठोर आवरण गल जाने के कारण दांत खोखला हो जाता है और यह गूदा नंगा हो जाता है। चूंकि गूदे के अन्दर तन्त्रिकाएं भी होती हैं जिनका सीधा सम्बन्ध मस्तिष्क से होता है अतः जिस समय जीवाणु इस गूदे को काटते हैं अथवा हम कोई ज्यादा ठण्डी या गर्म चीज पीते हैं और उनका प्रभाव गूदे पर पड़ता है तो गूदे में उपस्थित तन्त्रिकाएं तुरन्त मस्तिष्क को सूचना देती हैं और हम पीड़ा अथवा 'चीस' लगने का अनुभव करते हैं। पीप उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं का विष दांतों की रक्तवाहिनियों के साथ-साथ मसूढ़ों में और पूरे मुंह में फैल जाता है जिससे समस्त मुंह सूज जाता है।

चिकित्सा—दांत में दर्द अधिक हो तो कोई पीड़ाहर औषधि सेवन कराना चाहिए। इसके लिए गायगी कम्पनी की 'बूटा जोलिन्डीन अल्का' की एक-एक गोली दिन में तीन बार देनी चाहिए। एक और प्रभावशाली औषधि 'ब्यूटा प्राक्सीवान' (Buta Proxivon) है जिसका एक-एक कैप्सूल दिन में तीन बार दिया जाता है। ये औषधियां केवल प्रारम्भ में ही लाभ करती हैं बाद में इनका प्रभाव नहीं पड़ता। दांतों में उपस्थित जीवाणुओं को नष्ट करने के लिए कोई एन्टीबायोटिक जैसे कि टेट्रासाइक्लीन का भी सेवन करना चाहिए। स्थानीय प्रयोग के लिए रूई की फुरेरी पर लौंग का तेल लगा कर खोखले दांत में भर

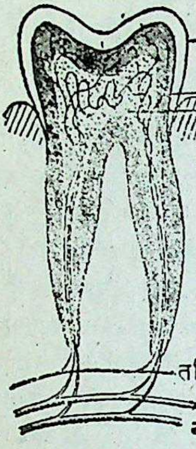

हमारे दांत की रचना : दांतों को पत्थर का मत समझिए। ये भी हमारा जीवित अंग हैं। इन्हें जीवित रखने के लिए हर समय रक्त नलिकाओं द्वारा इनमें रक्त का आदान-प्रदान होता रहता है। इसी रक्त से इन्हें भोजन मिलता है। इनके अन्दर तंत्रिकाएं अर्थात् नर्वस भी होती हैं जिनका सीधा सम्बन्ध हमारे मस्तिष्क से होता है।

देने पर तुरन्त पीड़ा शान्त हो जाती है परन्तु यह तेल ऐसी सावधानी से लगाना चाहिए कि मसूढ़ों पर न लगे अन्यथा छाले पड़ जाएंगे। यदि लौंग का तेल न मिले तो 2-3 लौंग दाढ़ के नीचे दवा लेने से आराम मिल जाता है। टिंक्चर आयोडीन की फुरैरी खोखले दांत में रख लेने से लाभ मिलता है। 'अमृतधारा' या डाबर की 'पुदीन हरा' औषधि में रुई का नन्हा-सा टुकड़ा तर करके खोखले दांत-दाढ़ में लगा देने से भी बड़ा अराम मिलता है। ये समस्त औषधियाँ जीवाणुओं को मार देती हैं।

वैसे तो अधिकांश चिकित्सक खोखले दांत को उखाड़ने की ही सलाह देते हैं परन्तु यह आवश्यक नहीं है। यदि दांत इतना खोखला न हो कि तन्त्रिकाएं नंगी हो गई हों तो इसमें दन्त चिकित्सक से चांदी भरवा लेनी चाहिए। चांदी भरवा लेने पर वर्षों तक वही दांत काम देता रहता है।

७. आंखों के रोग

आंखें दुखना (कन्जन्क्टीवाइटिस)

हमारी आंख में ऊपरी पलक से लेकर नीचे पलक तक अन्दर-ही-अन्दर तथा आंख की पुतली व सफेद भाग के ऊपर एक पारदर्शक पतली-सी झिल्ली चढ़ी होती है जिसे कन्जन्क्टाइवा (Conjunctiva) कहते हैं। आंखों पर बैक्टीरिया का आक्रमण होने से कन्जन्क्टाइव सूज कर लाल हो जाती। इसे ही आंख उठना या आंख दुखना या अभिष्यन्द कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे पिन्क आई (Pink eye या लाल आंख) भी कहा जाता है।

आंख उठने के कई कारण हो सकते हैं परन्तु लक्षण एक से ही होते हैं। जब रोग हल्का रहता है तो आंख लाल हो जाती है। आंख गढ़ती है, ऐसा जान पड़ता है मानो आंखों में बालू के कण पड़ गए हों। प्रकाश में आंख खोलते नहीं बनता। आंख से खूब पानी गिरता है। आंख से पहले तो पानी ही निकलता है पीछे पीले रंग का तरल पदार्थ और कीचड़ निकलता है। सोकर उठने पर पलकें चिपकी रहती हैं। कभी एक और कभी दोनों आंखें एक साथ ही उठती हैं परन्तु अक्सर पहले एक ही आंख उठती है और संक्रमण होकर दूसरी आंख भी उठ जाती है।

यद्यपि किसी कीड़े के काट लेने, आंख में धूल या धुआं भर जाने, आंख को अचानक बहुत देर तक ठण्डी हवा लग जाने आदि से भी आंखें दुखने आ जाती हैं परन्तु मुख्य रूप से इसका कारण बैक्टीरिया ही हैं।

रोकथाम और चिकित्सा

यह रोग संक्रामक होने के कारण इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि एक बच्चे की आंखें दुखने पर घर के दूसरे बच्चों को इसकी छूत न लगे। रोगग्रस्त

आंख को छूने से पहले और बाद में हाथों को अच्छी तरह धो लेना चाहिए। रोग-ग्रस्त बच्चे को स्कूल नहीं भेजना चाहिए अन्यथा उसके सहपाठी भी रोगग्रस्त हो जाएंगे। बच्चों में इस रोग का प्रसार प्राय: स्कूलों द्वारा ही होता है।

आंख में भरी हुई कीचड़ और पीप को दिन में कई बार धोकर निकालते रहना चाहिए ताकि संक्रमण और न बढ़ने पाये। आंखों को धोने के लिए नमक मिला पानी प्रयोग करना अच्छा रहता है। इसके लिए एक अठन्नी के सिक्के पर जितना पिसा हुआ नमक (खाने का नमक) आ जाए उतना लेकर एक गिलास पानी में घोल लें। इस पानी को केवल एक उबाल देकर ठण्डा करके बारीक कपड़े में छान लें ताकि इस घोल में से धूल आदि के कण निकल जाएं।

बच्चे की आंखें धोने से पहले अपने हाथ साफ पानी से धो लें। अब बच्चे को अपनी गोद में बिठा लें और दूसरे आदमी से कहें कि वह बच्चे के सिर को पकड़े रहे। जिधर की आंख धोनी है उस तरफ को बच्चे का सिर झुका दें। पहले पलकों को बाहर धो लें। इसके बाद बाएं हाथ की पहली उंगली आंख के ऊपर की हड्डी पर तथा अंगूठा गाल की हड्डी पर रख कर धीरे-धीरे इन दोनों को परे हटाते हुए आंख को खोल लें। दाहिने हाथ में रुई लेकर इसे नमक के पानी में डुबो कर इसे आंख पर इस तरह निचोड़ें कि नमक का पानी दोनों पलकों के बीच आंख में से होकर बाहर निकल जाए। गाल पर लगाए गये एक शकोरे या अन्य पात्र में इस पानी को एकत्रित करते जाएं और बाद में इसे फेंक दें। अब पलकें बन्द होने के लिए छोड़ दें और रुई का एक साफ टुकड़ा लेकर इन्हें धीरे-धीरे पोंछ दें। हर बार धोने और पोंछने के लिए रुई का नया टुकड़ा लें। अगर रुई न मिले तो कोई पुरानी धोती में से कपड़ा फाड़ कर साबुन से धोकर उबाल कर सुखा कर अलग सम्भाल कर रख लें। यह कपड़ा चोट-फेंट पर बांधने और आंखें धोने व पोंछने आदि के काम भी आ सकता है। यह डाक्टरी गाज जैसा काम देगा।

यदि नमक का पानी तैयार करने में झंझट हो तो सादा पानी उबाल कर इतना ठण्डा कर लें कि जरा-सा गुनगुना रह जाए। इस पानी में आंखें धोई जा सकती हैं।

दुखती आंखों को केवल उपरोक्त रीति से रुई या साफ किए हुए हाथ से पोंछना चाहिए। माताओं को चाहिए कि अपनी धोती के पल्लू से दुखती आंखों

को साफ न करें। ऐसा करने से कुछ समय बाद माता अपना या दूसर बच्चे का चेहरा उसी पल्लू से पोंछती है तो उसकी अथवा दूसरे बच्चे की आंखें दुखने आ जाती हैं।

आंखों के धोने के बाद इनमें कोई जीवाणुनाशक औषधि की बूंदें टपका दें या जीवाणुनाशक आंखों का मरहम लगा दें। अनुभवों से पता चला है कि 'पेनिसिलिन आई आइन्टमेट' कुछ लोगों की आंखों को नुकसान पहुंचा देता है अतः इसको न लगाएं।

साधारण आंख दुखने में सल्फासीटामाइड नामक सल्फा औषधि से निर्मित एल्ब्यूसिड आई ड्राप्स (Albucid eye drops) या लौकुला (Locula) इन दोनों में से किसी एक की दो-दो बूंदें दिन में 10-15 बार डालने से बहुत जल्दी लाभ हो जाता है। औषधि दुखती आंख के नीचे के पलक को जरा-सा उठा कर इसके अन्दर डालना चाहिए। ये दोनों अत्यन्त सुरक्षित और प्रभावशाली औषधियां हैं। ये औषधियां 10%, 20% तथा 30% शक्ति के घोल के रूप में आती हैं। साधारण आंख दुखने में 20% शक्ति वाली काफी रहती है। आंखों से पानी आने, गुहेरी (Stye), रोहे (Trachoma) आदि नेत्र रोगों में भी ये औषधियां बड़ी लाभकारी हैं क्योंकि ये अनेक प्रकार के जीवाणुओं को नष्ट कर देती हैं।

आजकल केमिस्टों के यहां पार्क डेविस कम्पनी के क्लोरोमायसेटीन ऐप्लीकैप्स (Chloromycetin Applicaps) के नाम से नन्हें-नन्हें प्लास्टिक के ट्यूब आते हैं जिनमें बहुत थोड़ी-सी केवल 2-4 बूंद के बराबर दवा होती है। एक बार में पूरा एक ट्यूब दवा आंख में डालते हैं। दिन में तीन-चार बार यह दवा प्रयोग करनी चाहिए। यह औषधि आंखों के कई प्रकार के संक्रामक रोगों को नष्ट करती है। जो रोग उपरोक्त सल्फासीटामाइड आई ड्राप्स से ठीक न हों, इससे ठीक हो जाते हैं।

मरहम से लाभ उठाने के लिए यह आवश्यक है कि पलकों को पलट कर आंख के अन्दर मरहम लगाया जाए।

रोहे

इस रोग में ऊपरी पलक के अन्दर की सतह में दाने उभर आते हैं। ये दाने नन्हें-नन्हें सरसों या राई जैसे होते हैं और इनके कारण आंख बराबर गड़ती है।

यदि प्रारम्भ में ही समुचित इलाज न हो तो कुछ दिनों बाद आंख की पुतली पर चढ़े स्वच्छ मण्डल (Cornea कार्निया) पर भी दाने निकल आते हैं या पलक के अन्दर के दानों से वाहर रगड़ खाते रहने से कार्निया पर जख्म हो जाते हैं और तब अन्धे हो जाने की सम्भावना बनी रहती है। बहुत से व्यक्ति इसी रोग के कारण अन्धे हो जाते हैं। फिर जब पलक के अन्दर के जख्म अच्छे हो जाते हैं तो जो क्षत चिह्न (Scar) बनते हैं वे प्राय: पलकों को इतना मोटा बना देते हैं कि वे पूरी तरह खुलते नहीं। कभी-कभी ये क्षत चिह्न पलकों को भीतर की ओर खींचते हैं जिससे बरौनियां (Eye lashes) आंख की ओर खिच जाती हैं और ये बाल आंख में गड़ कर बड़ा कष्ट देते हैं और आंखों को नुकसान पहुंचाते हैं। ऐसे पलकों को 'पड़वाल' कहा जाता है।

रोहे का वास्तविक रोग एक जाति के रिकेटसिया द्वारा फैलता है और काफी समय तक इलाज करने पर ठीक होता है।

चिकित्सा—जब किसी की आंखें दुखने आवें और औषधि उपचार से 5-6 दिनों में भी ठीक न हों तो ऊपर की पलकें पलट कर देखना चाहिए कि रोहे तो नहीं हो गए हैं। यदि रोहे हो गए हों तो कम-से-कम एक महीने तक लाकुला या ऐल्ब्यूसिड 20% शक्ति वाली आई ड्राप्स दिन में तीन वार डालते रहने से लाभ हो सकता है। यदि इससे लाभ न हो तो टेट्रासाइक्लीन आई आइन्टमेन्ट दिन में तीन बार एक महीने तक लगाना चाहिए। रोग से पूर्ण रूप से मुक्ति पाने के लिए आंखों में औषधि डालने के साथ-साथ रोगी को कोई सल्फा औषधि का सेवन 10 से 15 दिन तक कराना चाहिए। इसके लिए सल्फाफेनाजोल (व्यापारिक नाम—ओरिसल Orisul) एक टेब्लेट सुबह और एक शाम को देते रहना चाहिए। इस दवा के सेवन के दौरान पानी खूब पीना चाहिए। सल्फा औषधि के स्थान पर टेट्रासाइक्लीन का प्रयोग इतनी अवधि तक किया जा सकता है।

विटामिन 'ए' की कमी से बच्चों में अन्धापन

ऐसे बच्चे जिन्हें अपने भोजन में विटामिन ए काफी मात्रा में नहीं मिलता है, अन्धे हो सकते हैं। विटामिन ए की कमी से एक से पांच साल तक के बच्चों के अन्धा होने का ज्यादा डर रहता है।

अगर बच्चे में विटामिन ए की कमी है तो वह अचानक ही अन्धा नहीं हो जाता है। वह धीरे-धीरे अन्धा होता जाता है।

अगर एक बच्चा धुंधली (कम) रोशनी में ठीक से नहीं देख सकता है तो उसे रतौंधी नाम की बीमारी है। रात को न देख पाना विटामिन ए की कमी के शुरू होने का पहला लक्षण है। अगर बच्चे की आंख का सफेद भाग (Conjunctiva) बे आब हो गया है और सूखा रहता है तो यह विटामिन ए की कमी के होने का शुरू का लक्षण है।

अगर बच्चे की आंख के सफेद भाग पर राख के रंग के झागदार तिकोने धब्बे हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि उस बच्चे को बिटोट के धब्बे हैं। बिटोट के धब्बे भी विटामिन ए की कमी होने का शुरू का लक्षण है।

अगर बच्चे में इनमें से कोई भी लक्षण है तो जल्दी ही उसका इलाज कराना चाहिए। अगर जल्दी ही उसका इलाज नहीं किया जाता है तो बच्चा एकदम अन्धा हो सकता है। बहुत बिगड़ी हुई दशाओं में विटामिन ए की कमी से बच्चे की आंख का काला भाग नष्ट हो जाता है। तब बच्चा एकदम अन्धा हो जाता है इस तरह के अन्धेपन को हम 'केरेटोमलेशिया' कहते हैं।

रोकथाम और चिकित्सा—विटामिन ए की कमी न पड़ने पाये इसके लिए बच्चे की आयु छः महीने की होते ही उसे रोजाना ऐसा भोजन देना चाहिए जिसमें विटामिन ए अधिक मात्रा में होता है। ऐसे खाद्य पदार्थ हैं गहरे हरे रंग की पत्तियों वाले साग, टिमाटर, गाजर, आम आदि। इसके अतिरिक्त अण्डा, पशुओं का यकृत (Liver), दूध व दूध से बनी चीजें जैसे कि मक्खन और घी तथा मछली के जिगर का तेल में भी यह विटामिन बड़ी मात्रा में होता है।

माताओं को चाहिए कि बच्चे की आयु 4-5 महीने की होते ही उसको प्रतिदिन टमाटर का रस (बीज अलग करके), उबली हुई गाजर, सन्तरे या पके आम का रस देती रहें। उनको पालक के कुछ पत्ते डाल कर खिचड़ी बना कर चटाया

करें। बच्चे की आयु एक वर्ष हो जाने पर उसे प्रतिदिन 50 ग्राम पालक या अन्य हरा साग दाल या खिचड़ी में पका कर देते रहना चाहिए। बच्चों को प्रारम्भ में उबाल कर और बाद में कच्ची गाजरें खिलाते रहना चाहिए। इस नियम का पालन करने से उनकी आखें सदैव स्वस्थ रहेंगी।

यदि बच्चे को उपरोक्त भोजन उपलब्ध न हो अथवा उसमें रतौंधी के लक्षण प्रकट होने लगें तो उसे विटामिन A औषधि के रूप में सेवन कराना चाहिए।

औषधि के रूप में विटामिन ए नीचे लिखे व्यापारिक नामों से मिलता है—

ऐरोविट (Arovit) निर्माता रोशे कम्पनी।

इसकी चबाने वाली मीठी टेब्लेट (ड्रेजीज) आती हैं। एक स्ट्रिप में 8 टेब्लेट पैक होती हैं। प्रत्येक टेब्लेट में 50,000 यूनिट विटामिन ए होता है।

एक्वासोल-ए (Aquasol-A) निर्माता U S V P L

इसके प्रत्येक कैप्सूल में 50,000 यूनिट विटामिन ए होता है। इसका 30 कैप्सूल का पैकिंग होता है।

हर छठे महीने चार दिन तक उपरोक्त मीठी टेब्लेट या कैप्सूल रोजाना एक-एक खिलाते रहें ताकि बच्चे के शरीर में पूरा 200,000 यूनिट विटामिन ए पहुंच जाया करे। छः महीने से अधिक आयु के सब बच्चों को एक साथ ही सेवन कराना अच्छा रहेगा। छः महीने से कम आयु के बच्चों को यह विटामिन कैप्सूल सेवन न कराएं।

इसके अतिरिक्त बूंदों (Drops) तथा इन्जेक्शन के रूप में विभिन्न निर्माताओं का बना विटामिन ए मिलता है।

स्मरण रखना चाहिए कि विटामिन ए उपरोक्त से अधिक मात्रा में देने की आवश्यकता नहीं हैं। इसकी अधिक मात्रा हानि पहुंचा सकती है।

आंखों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सूचनाएं

- आंख में कोई भी रोग हो खुद इलाज करने या नीम-हकीम के चक्कर में पड़ने के बजाए योग्य और अनुभवी चिकित्सक का ही सहारा लीजिए।
- कुछ माताएं बच्चों की आंखों को निरोग रखने के लिए काजल में पेनि-

सिलिन का आखों का मरहम मिलाकर बच्चों को लगाया करती हैं। यह भयानक भल है! इसका लगातार प्रयोग आंखों को बहुत भारी नुकसान पहुंचा सकता है। याद रखें काजल लगाने से बच्चे की आंखें बड़ी नहीं होतीं।

◦ काजल या सुर्मा डालने से आंखों को कोई लाभ नहीं होता। ये चीजें अनाड़ीपन से बनाई जाएं तो नुकसान पहुंचा सकती हैं।

◦ संसार में कोई भी दवा ऐसी नहीं है जो नेत्र ज्योति बढ़ा सके अतः 'चश्मा तोड़ सुर्मा, 'असली मोती और ममीरे का सुर्मा' आदि के चक्कर में रुपया न फूंकिए।

◦ कुछ लोग आंखों को निरोग रखने के लिए रोजाना कोई-न-कोई दवा डालते रहते हैं। ये सब बेकार की बातें हैं। आंखों को हम रोजाना सुबह को ताजा पानी से धोते रहें यही इन्हें निरोग रखने के लिए काफी है। औषधि का प्रयोग केवल रोग होने पर करना चाहिए।

◦ होम्योपैथिक दवा बेचने वालों के यहां 'सिनेरेरिया मारीटोमा सक्कस' नामक पानी के रंग की द्रव दवा मिलती है। संसार भर के होम्योपैथिक चिकित्सकों का विश्वास है कि यदि 35-40 वर्ष की आयु से ही प्रतिदिन इस दवा की एक एक बूंद प्रातः व सायंकाल आंखों में डाल ली जाए तो आंखें निरोग रहती हैं और मोतियाबिंद नहीं होता। इसके प्रयोग करने वाले कुछ लोग यह भी कहते हैं कि यह दवा नेत्र ज्योति कम नहीं होने देती है।

८. स्त्रियों के सामान्य रोग

स्त्री रोगों से हमारा आशय उन रोगों से है जो स्त्रियों के जनन अंगों से सम्बन्ध रखते हैं। योनि, गर्भाशय, फैलोपियन नलिका (डिम्ब वाहिनी) और डिम्ब ग्रन्थियां ये सब सामूहिक रूप से जननांग कही जाती हैं।

मासिक धर्म

जब लड़की 13 या 14 वर्ष की आयु की हो जाती है तो पहली बार उसकी डिम्ब ग्रन्थियों में से एक डिम्ब (अण्डा) निकलता है और हर महीने इसी प्रकार डिम्ब निकलता रहता है। यह डिम्ब निकलना स्त्री की 45-50 वर्ष की आयु में जाकर बन्द हो जाता है। डिम्ब के उत्पादन पर कई हारमोनों का नियन्त्रण रहता है जिसका निर्णय मस्तिष्क की जड़ में स्थित पीयूष ग्रन्थि करती है। इन हारमोनों की मात्रा में उचित सन्तुलन रहने से डिम्ब ग्रन्थि में डिम्ब पककर डिम्बवाहिनी के पास गिरता है और यह नलिका इसे पकड़कर अपने अन्दर समेट लेती है जहां यह आगे बढ़ता हुआ गर्भाशय की ओर चलता है। यदि इस समय स्त्री का पुरुष से सम्भोग हो जाता है तो वीर्य में उपस्थित करोड़ों शुक्राणु गर्भाशय में प्रविष्ट होकर इस डिम्ब की तलाश में डिम्बवाहिनी में घुस आते हैं और अगर यहां उन्हें डिम्ब मिल जाता है तो उस पर अनेकों शुक्राणु चिपट जाते हैं। इनमें से कोई एक शक्तिशाली शुक्राणु डिम्ब के ऊपरी आवरण में छेद करके डिम्ब के अन्दर प्रविष्ट हो जाता है। इसी को डिम्ब निषेचित हो जाना या गर्भ ठहरना कहा जाता है। यह निषेचित हुआ डिम्ब अब गर्भाशय की ओर बढ़ने लगता है।

प्रकृति ने ऐसा प्रबन्ध बना रखा है कि हर महीने नियम से गर्भाशय की दीवारों के साथ जो एक अस्तर लगा होता है उस अस्तर में आकर रक्त भरने लगता

है और यह अस्तर रक्त से फूल कर मोटा होने लगता है। निषेचित हुआ डिम्ब जब गर्भाशय में आता है तो इसी अस्तर से चिपक जाता है और इसी अस्तर से उसे भोजन मिलना शुरू हो जाता है और आगे चलकर यही निषेचित डिम्ब बच्चा बन जाता है।

डिम्ब ग्रन्थि से जो डिम्ब पक कर हर महीने निकलता है इसकी आयु केवल दो-तीन दिन की होती है। अगर इन दिनों स्त्री सम्भोग करती है तो गर्भ रहने की संभावना अधिक-से-अधिक होती है। यदि इन दिनों सम्भोग नहीं होता तो डिम्ब स्वयं ही साबुन के बुलबुले की तरह फट कर मर जाता है।

अधिकतर महीनों में ऐसा होता है कि डिम्ब निषेचित नहीं होता। इसके कई कारण हो सकते हैं, स्त्री अविवाहित हो अथवा सम्भोग ऐसे समय किया जाए जब डिम्ब डिम्बग्रन्थि से निकला न हो अथवा निकल चुका हो परन्तु वह मर गया हो। इस दशा में गर्भाशय के अस्तर में निषेचित डिम्ब का पालन-पोषण करने के लिए जो रक्त भर गया था उसकी जरूरत नहीं रहती अतः पीयूष ग्रन्थि की आज्ञा से यह अस्तर फट जाता है। इस अस्तर के टुकड़े थक्कों तथा रक्त के रूप में योनि से बाहर निकलने लगते हैं। इसी को मासिक स्राव या मासिक धर्म कहा जाता है। जब चार-पांच दिन तक जाने वाले मासिक स्राव के साथ समस्त अस्तर बाहर निकल आता है तो रक्त निकलना बन्द हो जाता है और गर्भाशय के अन्दर अगले महीने निकलने वाले डिम्ब के स्वागत की तैयार में फिर अस्तर में रक्त भरने लगता है। इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मासिक स्राव का सम्बन्ध डिम्ब निकलने से है। यदि मासिक स्राव होता है तो इसका अर्थ यह है कि उस महीने निकला डिम्ब बेकार गया।

रक्त की मात्रा और मासिक चक्र—मासिक धर्म में कितनी मात्रा में और कितने दिन तक रक्त निकलता है तथा कितने दिनों बाद मासिक धर्म आता है (मासिक चक्र) अलग-अलग स्त्रियों में इनमें भी विभिन्नता देखी जाती है। अधिकतर स्त्रियों को चार-पांच दिन तक रक्त जाता है और प्रत्येक 26 या 28 दिन बाद अगली माहवारी शुरू होती है। यह क्रम हर स्त्री में अलग-अलग होता है पर जो एक बार क्रम बन जाता है वही क्रम चलना चाहिए। तब वह मासिक चक्र सही कहा जाता है। रक्त स्राव 3-5 दिन तक चलता है उसके बाद बन्द हो जाता है। यह भी हर स्त्री का अलग-अलग होता है।

लेकिन यह भी देखा जाता है कि बहुत-सी पूर्णत: निरोग स्त्रियों में भी मासिक धर्म 21 दिन बाद अथवा 35 दिन के अन्तर से निकलता है, जिसमें रक्त की मात्रा बहुत मामूली-सी भी हो सकती है और रक्त केवल दो दिन तक ही आता है। इन स्त्रियों के अन्दर कोई गड़बड़ी नहीं है, औरतों-औरतों में ऐसे अन्तर पाए ही जाते हैं जो कि बिल्कुल प्राकृतिक होते हैं। इसी प्रकार कुछ स्त्रियों में रक्त बहुत ज्यादा मात्रा में निकलता है। दिन में कई-कई बार कपड़ा लगाना पड़ता है। यह भी प्राकृतिक बात है।

मासिक चक्र में गड़बड़ी के कई कारण होते हैं। वैसे यदि गर्भ ठहर जाता है तो मासिक धर्म बन्द हो जाता है अथवा मानसिक तनाव, चिन्ता अथवा अरक्तता (Anaemia) आदि से मासिक चक्र व रक्त स्राव आदि में परिवर्तन आ जाता है।

कष्ट के साथ मासिक स्राव

यह आमतौर पर 13 से 20 वर्ष आयु के बीच की नौजवान लड़कियों की समस्या है। देखा जाता है कि हर तीन में से दो लड़कियों को माहवारी से पहले तथा इसके दौरान पेडू में पीड़ा होती है। अधिकतर स्त्रियां इस पीड़ा पर कोई विशेष ध्यान देती ही नहीं और अपने दैनिक कार्यों में लगी रहती हैं। परन्तु कुछ लड़कियों को वास्तव में बहुत ज्यादा ही पीड़ा होती है जिसके कारण वे कोई कार्य नहीं कर पातीं।

यह रोग लड़की का विवाह हो जाने के बाद आमतौर पर जाता रहता है। बच्चा हो जाने के बाद अधिकांश स्त्रियां ठीक हो ही जाती हैं।

चिकित्सा—बोतल में गर्म पानी भर कर पेडू को सेकना चाहिए और काम-काज में बराबर लगे रहना चाहिए। खाली बैठने वाली आरामतलब लड़कियों को पीड़ा भी ज्यादा होती है। ज्यादा पीड़ा हो तो दो टेब्लेट ऐस्प्रिन की पानी के साथ खा लेना चाहिए। कुछ लड़कियों को पैरासीटामोल ज्यादा माफिक बैठती है। इसकी एक-दो टिकिया दिन में तीन बार ताजा पानी से सेवन कराना चाहिए। इससे लाभ न हो तो बेरालगन (Baralgan) की एक-दो टिकिया दिन में तीन बार खिलाना चाहिए।

माहवारी रुक जाना या कम मात्रा में निकलना

जब लड़की को मासिक धर्म होने लगता है तो हर महीने होता रहता है और केवल गर्भवती हो जाने पर ही वास्तव में रुकता है। कई बार ऐसा भी होता है कि घर में कोई ऐसा क्लेश हो जाए जिससे लड़की को बहुत दुःख हो तब भी रुक जाता है। यदि लड़की की डिम्ब ग्रन्थियां नारी हारमोन का उत्पादन कम मात्रा में करने लगती हैं तब भी मासिक स्राव नही निकलता या कम मात्रा में निकलता है। पौष्टिक भोजन न मिलने से आई हुई शारीरिक कमजोरी भी इसका कारण बन सकती है। परन्तु देखा गया है कि अधिकांश रोगिणियों के शरीर में रक्त कम होने के कारण ही मासिक स्राव कम मात्रा में आता है। यदि रोगिणी दुबली-पतली हो, उसकी त्वचा पीलेपन पर दिखाई दे तो समझना चाहिए उसके शरीर में रक्त की कमी है जिसे एनीमिया कहते हैं। इनको औषधि के रूप में लोहा खिलाना चाहिए, जैसा कि 'एनीमिया' रोग में बताया गया है। जब इनके शरीर में रक्त क्षीणता दूर हो जाएगी तो मासिक धर्म ठीक होने लगेगा।

माहवारी में अधिक रक्त जाना

आमतौर पर लड़कियों में माहवारी शुरू होने के बाद के कुछ महीनों तक अधिक मात्रा में रक्त निकलता है। ऐसा भी हो सकता है. जितने दिनों तक प्राय: माहवारी रहती है उससे अधिक समय तक रक्त निकलता रहे। अधिकतर दशाओं में ऐसा होता है कि दो माहवारियां शुरू होने के बीच का अन्तर यानी मासिक चक्र ठीक रहता है और मासिक चक्र के बीच के दिनों में रक्त नहीं निकलता।

अधिक मात्रा में माहवारी का रक्त जाने का कारण आमतौर पर यह होता है कि उस स्त्री के शरीर की हारमोन उत्पादक ग्रन्थियों में उस समय तक ठीक तरह तालमेल नहीं बैठ पाया है। कुछ महीनों के अन्दर ही इन ग्रन्थियों में सन्तुलन कायम हो जाता है और रक्त की मात्रा घट कर औसत पर आ जाती है। ऐसा भी होता है कि कुछ स्त्रियों में अन्य स्त्रियों की अपेक्षा अधिक मात्रा में रक्त निकलता है परन्तु धीरे-धीरे उनका शरीर इसका आदी हो जाता है। इस दशा में किसी दवा-दारू की जरूरत नहीं होती।

रक्त स्राव की मात्रा कम करने के लिए प्राय: नीचे लिखी रक्त रोकने वाली औषधियां प्रयोग की जाती हैं।

लेकिन यह भी देखा जाता है कि वहुत-सी पूर्णतः निरोग स्त्रियों में भी मासिक धर्म 21 दिन बाद अथवा 35 दिन के अन्तर से निकलता है, जिसमें रक्त की मात्रा बहुत मामूली-सी भी हो सकती है और रक्त केवल दो दिन तक ही आता है। इन स्त्रियों के अन्दर कोई गड़बड़ी नहीं है, औरतों-औरतों में ऐसे अन्तर पाए ही जाते हैं जो कि बिल्कुल प्राकृतिक होते हैं। इसी प्रकार कुछ स्त्रियों में रक्त बहुत ज्यादा मात्रा में निकलता है। दिन में कई-कई बार कपड़ा लगाना पड़ता है। यह भी प्राकृतिक वात है।

मासिक चक्र में गड़बड़ी के कई कारण होते हैं। वैसे यदि गर्भ ठहर जाता है तो मासिक धर्म बन्द हो जाता है अथवा मानसिक तनाव, चिन्ता अथवा अरक्तता (Anaemia) आदि से मासिक चक्र व रक्त स्राव आदि में परिवर्तन आ जाता है।

कष्ट के साथ मासिक स्राव

यह आमतौर पर 13 से 20 वर्ष आयु के बीच की नौजवान लड़कियों की समस्या है। देखा जाता है कि हर तीन में से दो लड़कियों को माहवारी से पहले तथा इसके दौरान पेडू में पीड़ा होती है। अधिकतर स्त्रियां इस पीड़ा पर कोई विशेष ध्यान देती ही नही और अपने दैनिक कार्यों में लगी रहती हैं। परन्तु कुछ लड़कियों को वास्तव में बहुत ज्यादा ही पीड़ा होती है जिसके कारण वे कोई कार्य नहीं कर पातीं।

यह रोग लड़की का विवाह हो जाने के बाद आमतौर पर जाता रहता है। वच्चा हो जाने के बाद अधिकांश स्त्रियां ठीक हो ही जाती हैं।

चिकित्सा—बोतल में गर्म पानी भर कर पेडू को सेकना चाहिए और काम-काज में बराबर लगे रहना चाहिए। खाली बैठने वाली आरामतलब लड़कियों को पीड़ा भी ज्यादा होती है। ज्यादा पीड़ा हो तो दो टेब्लेट ऐस्प्रिन की पानी के साथ खा लेना चाहिए। कुछ लड़कियों को पैरासीटामोल ज्यादा माफिक बैठती है। इसकी एक-दो टिकिया दिन में तीन बार ताजा पानी से सेवन कराना चाहिए। इससे लाभ न हो तो बेरालगन (Baralgan) की एक-दो टिकिया दिन में तीन बार खिलाना चाहिए।

माहवारी रुक जाना या कम मात्रा में निकलना

जब लड़की को मासिक धर्म होने लगता है तो हर महीने होता रहता है और केवल गर्भवती हो जाने पर ही वास्तव में रुकता है। कई बार ऐसा भी होता है कि घर में कोई ऐसा क्लेश हो जाए जिससे लड़की को बहुत दुःख हो तब भी रुक जाता है। यदि लड़की की डिम्ब ग्रन्थियां नारी हारमोन का उत्पादन कम मात्रा में करने लगती हैं तब भी मासिक स्राव नहीं निकलता या कम मात्रा में निकलता है। पौष्टिक भोजन न मिलने से आई हुई शारीरिक कमजोरी भी इसका कारण बन सकती है। परन्तु देखा गया है कि अधिकांश रोगिणियों के शरीर में रक्त कम होने के कारण ही मासिक स्राव कम मात्रा में आता है। यदि रोगिणी दुबली-पतली हो, उसकी त्वचा पीलेपन पर दिखाई दे तो समझना चाहिए उसके शरीर में रक्त की कमी है जिसे एनीमिया कहते हैं। इनको औषधि के रूप में लोहा खिलाना चाहिए, जैसा कि 'एनीमिया' रोग में बताया गया है। जब इनके शरीर में रक्त क्षीणता दूर हो जाएगी तो मासिक धर्म ठीक होने लगेगा।

माहवारी में अधिक रक्त जाना

आमतौर पर लड़कियों में माहवारी शुरू होने के बाद के कुछ महीनों तक अधिक मात्रा में रक्त निकलता है। ऐसा भी हो सकता है. जितने दिनों तक प्रायः माहवारी रहती है उससे अधिक समय तक रक्त निकलता रहे। अधिकतर दशाओं में ऐसा होता है कि दो माहवारियां शुरू होने के बीच का अन्तर यानी मासिक चक्र ठीक रहता है और मासिक चक्र के बीच के दिनों में रक्त नहीं निकलता।

अधिक मात्रा में माहवारी का रक्त जाने का कारण आमतौर पर यह होता है कि उस स्त्री के शरीर की हारमोन उत्पादक ग्रन्थियों में उस समय तक ठीक तरह तालमेल नहीं बैठ पाया है। कुछ महीनों के अन्दर ही इन ग्रन्थियों में सन्तुलन कायम हो जाता है और रक्त की मात्रा घट कर औसत पर आ जाती है। ऐसा भी होता है कि कुछ स्त्रियों में अन्य स्त्रियों की अपेक्षा अधिक मात्रा में रक्त निकलता है परन्तु धीरे-धीरे उनका शरीर इसका आदी हो जाता है। इस दशा में किसी दवा-दारू की जरूरत नहीं होती।

रक्त स्राव की मात्रा कम करने के लिए प्रायः नीचे लिखी रक्त रोकने वाली औषधियां प्रयोग की जाती हैं।

कैडिला कम्पनी की बनी **कैडीस्पर-सी** (Cadisper-C) इसकी एक-एक गोली दिन में तीन बार देना चाहिए। एक अन्य उपयोगी औषधि U S V & P कम्पनी की बनी **गाइनी-सी० वी० पी०** (Gynae-CVP) है। इसका एक-एक कैपसूल दिन में 3-4 बार खिलाना चाहिए। यदि इनसे लाभ न हो तो डोल्फिन कम्पनी की बनी **स्टिप्टोविट** (Styptovit) की एक-दो टिकियां दिन में चार बार सेवन कराना चाहिए।

परन्तु यदि औषधियों से लाभ न हो और बहुत दिनों तक इसी तरह अधिक मात्रा में रक्त जाता रहे जिससे स्त्री कमजोर होने लगे अथवा मासिक चक्र के बीच में भी रक्त जाने लगे तो तुरन्त किसी अनुभवी लेडी डाक्टर को दिखाना चाहिए क्योंकि हो सकता है कि उस स्त्री के गर्भाशय में कोई रोग या कैंसर हो गया हो।

श्वेत प्रदर

श्वेत प्रदर या 'पानी जाना' स्त्रियों में एक बहुत ही प्रचलित रोग है। भारत में ही नहीं संसार के समस्त देशों में फैला हुआ है। अनुमान लगाया गया है कि संसार की प्रत्येक तीन में से एक स्त्री प्रदर रोग में ग्रसित है।

प्रदर रोग का मुख्य कारण योनि के अन्दर रहने वाले जीवाणु हैं जो योनि की श्लेष्मीय झिल्ली को काटते रहते हैं जिससे लहेसदार स्राव अधिक मात्रा में बनकर योनि मार्ग से निकलने लगता है। ये जीवाणु दो विभिन्न जातियों के होते हैं और दोनों का ही अलग-अलग उपचार है।

अधिकांश स्त्रियों को प्रदर 'ट्राईकोमोनास वेजाइनैलिस' नामक जीवाणुओं से होता है। ये जीवाणु गर्भाशय के मुख और योनि की श्लेष्मीय झिल्ली को काटते रहते हैं जिससे पीले रंग का (पीप जैसा) दुर्गन्धित स्राव योनि तथा गर्भाशय ग्रीवा में से निकलता है और अन्दर तथा बाहर की ओर योनि में हर समय छिलन और पीड़ा होती रहती है। यह स्राव झागदार होता है। योनि की अन्दर की दीवारों तथा गर्भाशय ग्रीवा पर जगह-जगह लाल रंग के चकत्ते जैसे दिखाई देते हैं जिनमें ये जीवाणु रहते हैं। इनके कारण कभी-कभी सम्भोग के पश्चात रोगिणी के पति के शिश्न में भी खुजली होने लगती है।

इस जीवाणु से उत्पन्न होने वाले प्रदर को दूर करने के लिए मेट्रोनिडाजोल खास औषधि है जो मे एण्ड बेकर कम्पनी की बनी हुई 'फ्लैजियल' (Flagyl)

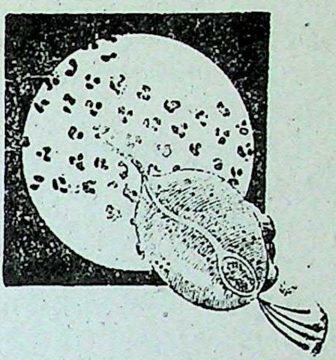

यह है प्रदर उत्पन्न करने वाला जीवाणु 'ट्राईकोमोनास' जो यहां सैकड़ों गुना बड़ा करके दिखाया गया है। इसके मुंह के आगे जो बारीक सूत्र जैसे निकले हुए हैं उनकी सहायता से यह योनि के अन्दर चलता फिरता रहता है।

व्यापारिक नाम से मिलती है तथा अन्य कम्पनियां भी बनाती हैं। इसकी 200 मिलीग्राम वजन की एक-एक टेब्लेट सुबह, दोपहर और शाम को भोजन के पश्चात् एक हफ्ते तक खिलाई जाती है। चूंकि इस प्रदर के जीवाणु सम्भोग क्रिया में पति के शिश्न पर चिपक कर उसके मूत्रमार्ग में घुसकर बैठ जाते हैं और सम्भोग के दौरान फिर पत्नी की योनि में आ सकते हैं अतः पत्नी से साथ ही पति को भी इसी प्रकार एक सप्ताह तक यह टेब्लेट्स खिलाई जाए तो शायद जल्दी ही रोग से मुक्ति मिल जाएगी। यदि एक सप्ताह में लाभ न हो तो एक सप्ताह और यह दवा खिलाई जाती है।

जिस समय स्त्री गर्भवती हो अथवा जिन दिनों बच्चे को अपना दूध पिला रही हो उन दिनों इस दवा का सेवन नहीं करना चाहिए।

प्रदर उत्पन्न करने वाले दूसरे जीवाणु खमीर जाति के हैं जिन्हें 'मोनीलिया' कहा जाता है। यह वही जीवाणु है जिसके कारण रात को गूथकर रखा हुआ आटा गर्मियों में सुबह तक खमीर बन जाता है। यद्यपि ये खमीर के जीवाणु स्वस्थ स्त्री की योनि में भी रहते हैं परन्तु योनि के अन्दर जो प्राकृतिक आर्द्रता रहती है उसमें अम्लता होती है जिसके कारण ये जीवाणु पनप नहीं पाते। परन्तु कभी-कभी ऐसा अवसर भी आता है—जैसा कि गर्भावस्था के दौरान अथवा मधुमेह के रोग में—कि योनि की दीवारों की अम्लता कम हो जाती है और इनमें मिठास आ जाता है अतः खमीर के जीवाणु पनपकर संख्या में बहुत बढ़ जाते हैं। फल यह होता है कि योनि से गाढ़ा हल्के पीले रंग का स्राव निकलने लगता है जिससे योनि के अन्दर

और बाहर खुजली और जलन रहने लगती है। स्राव में खटास की बदबू आती है। इन जीवाणुओं के सफेद रंग के धब्बे योनि की दीवारों पर लगे हुए देखे जा सकते हैं।

यदि किसी स्त्री को बार-बार इसी प्रकार का प्रदर होता रहे तो यह सम्भावना हो सकती है कि उसे मधुमेह (डायबिटीज) का रोग है।

इस मोनीलिया (खमीर) जाति से उत्पन्न प्रदर को नष्ट करने के लिए संसार में सबसे सस्ती और साथ ही बहुत असरदार दवा जेन्शियन वायलेट है। यह एक जीवाणुनाशक जामनी रंग है जो एक ग्राम लेकर 100 मिलीलिटर पानी में घोल लिया जाता है। इस घोल में एक छोटा-सा कपड़ा तर करके रोजाना एक बार योनि के अन्दर और बाहर अच्छी तरह लगा लेना चाहिए। एक-डेढ़ सप्ताह यह लोशन लगाने से रोग नष्ट हो जाता है। परन्तु इतना सस्ता नुस्खा न रोगी पसन्द करता है और न डाक्टर को इससे कुछ कमाई होती है अतः आजकल स्टैण्डर्ड दवाओं से इस प्रदर की चिकित्सा की जाती है। इसके लिए 'न्यास्टाटिन' (माइको-स्टेटिन) वैजाइनल पैसरी खास दवा है जो काफी मंहगी भी है। रात्रि को सोते समय एक पैसरी योनि के अन्दर गहराई में रख ली जाती है और दो सप्ताह या अधिक समय तक प्रति रात्रि को ऐसा ही किया जाता है। प्रायः दो सप्ताह में रोग ठीक हो जाता है। पैसरी योनि में रखने के बाद योनि में कोई कपड़ा नहीं लगाना चाहिए नहीं तो वह कपड़ा दवा को चूस लेगा और लाभ नहीं होगा। इस दवा से पेटीकोट पर पीले रंग का धब्बा पड़ जाता है अतः पुराना पेटीकोट इसके इस्तेमाल के दिनों में पहनना चाहिए।

स्मरण रखना चाहिए कि यह औषधि जेन्शियन वायलेट घोल से अधिक उपयोगी नहीं है।

दोनों प्रकार के प्रदरों की रोकथाम के लिए कुछ सावधानियां भी स्त्रियों को बरतनी पड़ेंगी। डाक्टरों का मत है कि दोनों प्रकार के जीवाणु प्रायः गुदा के अन्दर रहते हैं अतः टट्टी जाने के बाद शौच का पानी लेते समय यह सावधानी रखी जाए कि हाथ आगे योनि की तरफ आने की बजाए गुदा से पीछे की तरफ जाए ताकि जीवाणु योनि में न आ सकें।

प्रदर को दूर करने के कुछ घरेलू उपाय भी हैं जिन्हें आजमाया जा सकता है। यह पहले बताया जा चुका है कि दोनों प्रकार के प्रदर तब ही जन्म लेते हैं जब

योनि के अन्दर अम्लता कम हो जाती है अतः चार-पांच दिन तक खट्टे छाछ (मठा) से अथवा एक गिलास पानी में एक-डेढ़ चाय का चम्मच सिरका अथवा एक चाय का चम्मच भर फिटकरी मिलाकर योनि में डूश कर लिया जाए तो प्रदर के जीवाणु नष्ट अथवा कम हो सकते हैं। हर सप्ताह में एक-दो बार योनि को सादे पानी से डूश कर लिया जाए तो भी प्रदर की रोकथाम की जा सकती है। ट्राई-कोमोनाम जाति के प्रदर में रात्रि को सोते समय योनि के अन्दर एक कली लहसुन की रख लेने से भी काफी राहत महसूस होती है।

गर्भावस्था में होने वाली शिकायतें

जब यह निश्चित हो जाए कि गर्भ ठहर गया है तो गर्भवती स्त्री को चाहिए कि अपने निकट के जच्च-बच्चा केन्द्र में जाकर अपना नाम लिखवा लें और वहां के डाक्टर के आदेशों के अनुसार समय-समय पर अपनी परीक्षा करवाती रहें ताकि कोई बखेड़ा न पैदा होने पावे। प्रायः इन केन्द्रों से स्त्रियों को विटामिन व कैल्शियम आदि की गोलियां भी मुफ्त दी जाती हैं जिनको नियमित रूप से प्रयोग करते रहना चाहिए। यहां गर्भवती स्त्रियों में होने वाली कुछ शिकायतों की रोकथाम के विषय में लिखा जा रहा है।

उल्टियां

अधिकांश गर्भवतियों में यह गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है और वे इसे गर्भावस्था का सामान्य लक्षण मान कर इस पर विशेष ध्यान नहीं देतीं। लगभग पचास प्रतिशत गर्भवतियां, विशेष कर वे जो पहली बार गर्भवती हो रही हैं, गर्भ ठहरने के पहले कुछ सप्ताहों में उल्टियों से परेशान रहती हैं। इन स्त्रियों में सुबह सोकर उठने पर मिचली होती है और उल्टियां आती हैं परन्तु कभी-कभी शाम को भी उल्टियां होने लगती हैं। ये उल्टियां कई हफ्तों तक आती रहती हैं और प्रायः तीसरे या चौथे महीने के अंत तक स्वयं ही बन्द हो जाती हैं। यद्यपि उल्टियां आते समय तो परेशानी होती ही है परन्तु बाकी दिन में और कोई परेशानी नहीं होती और इन स्त्रियों को रोगी नहीं माना जा सकता।

चिकित्सा—खान-पान में सावधानी रख कर उल्टियों से होने वाले कष्ट को कुछ कम किया जा सकता है। गर्भ ठहरने के इन प्रारम्भिक सप्ताहों में मिर्च

मसालेदार और ज्यादा चिकनाई वाले भोजन की बजाए हल्का-फुल्का सादा भोजन रहना चाहिए। 'यदि उल्टियां सुबह के समय ही ज्यादा होती हैं तो रोगी को खाट से उठते ही एक कप चाय पी लेनी चाहिए जिसके साथ दो बिस्कुट काफी हैं। अगर सम्भव हो सके तो सोकर उठने पर हल्का-सा नाश्ता कर लिया जाए और दिन में दोपहर व शाम को भर पेट खाने की बजाए दिन में तीन-चार बार थोड़ा-थोड़ा करके खाया जाए।

यद्यपि उल्टियां कम करने के लिए जच्चा-बच्चा केन्द्र अथवा डाक्टर लोग विभिन्न प्रकार की दवाइयां देते हैं परन्तु इस कार्य के लिए वर्षों से परीक्षित और व्यापक रूप से प्रयोग की जाने वाली दवा 'ऐवोमीन' (Avomine) ही है। इसकी एक टेब्लेट रात को सोते समय पानी से खाते रहते हैं।

उल्टियां रोकने के लिए एक और अच्छी दवा मे एण्ड बेकर कम्पनी की बनी स्टेमेटिल (Stemetil) है। इसकी एक-एक टेब्लेट दिन में 3-4 बार पानी से खिलाते हैं। गर्भवती स्त्रियों को चाहिए कि जहां तक हो सके औषधियों के प्रयोग से बचें। इनको बर्दाश्त करने की आदत डालें।

यदि उल्टियां भयानक रूप ले लें अर्थात् दिन में कई-कई बार होने लगें तथा रोगिणी कमजोर होती जाए तो तुरन्त ही हस्पताल में भर्ती करवा देना चाहिए।

गर्भावस्था के प्रारम्भिक महीनों में रक्त आना

साधारणत: गर्भावस्था के नौ महीनों में और बच्चा होने के बाद दो-तीन महीनों तक स्त्री की योनि से रक्त नहीं निकलता और न महावारी होती है। वास्तव में योनि से रक्त न आना ही गर्भ ठहर जाने का पक्का-पक्का प्रमाण माना जाता है। अत: यदि किसी गर्भवती स्त्री की योनि से रक्त निकले तो उसे तुरन्त ही अपने डाक्टर से परामर्श करना चाहिए। यद्यपि कई दशाओं में यह रक्त निकलना मामूली-सी बात भी हो सकती है परन्तु डाक्टर यह चैक कर सकता है कि यह किसी गम्भीर रोग के कारण तो नहीं है।

माहवारी के धब्बे

कुछ स्त्रियों में गर्भवती हो जाने पर भी माहवारी के रक्त के धब्बे आते हैं। ये धब्बे साधारणत: उन दिनों में आते हैं जिन दिनों उन्हें माहवारी हुआ करती थी। ये धब्बे प्राय: तीसरे महीने तक आते रहते हैं। इसका कारण यह

समझा जाता है कि इस समय तक गर्भ में स्थित भ्रूण गर्भाशय को पूरी तरह भर नहीं पाता है जिससे गर्भाशय में काफी जगह खाली पड़ी रहती है। यह कोई गम्भीर बात नहीं है और न इसका कोई बुरा प्रभाव माता अथवा बच्चे के स्वास्थ्य पर पड़ता है। इन्हें रोकने के लिए इधर-उधर की कोई दवा नहीं खानी चाहिए।

गर्भस्राव

यदि पांचवें महीने से पहले गर्भ गिर जाए तो इसे गर्भस्राव कहा जाता है और इसके बाद गर्भ गिरने को गर्भपात कहा जाता है। गर्भस्राव गर्भावस्था की एक बड़ी समस्या है। अनुमान है कि प्रत्येक पांच में से एक भ्रूण गर्भस्राव द्वारा नष्ट हो जाता है। आमतौर पर इससे स्त्री के स्वास्थ्य को कोई खतरा नहीं होता और वह आगे चलकर फिर गर्भवती होकर स्वस्थ बच्चों को जन्म दे सकती है। लेकिन फिर भी गर्भवती के हक में यह अच्छा रहेगा कि गर्भस्राव के लक्षण उत्पन्न होते ही किसी कुशल चिकित्सक से परामर्श कर लें ताकि कोई अन्य बखेड़ा उत्पन्न होने की सम्भावना न रहे।

गर्भस्राव किन कारणों से होता है इसका अभी तक पता नहीं चल सका है। यदि गर्भवती के शरीर में कोई रोग नहीं है तो समझ लेना चाहिए कि गर्भ स्थित भ्रूण (बच्चा) में कोई खराबी है। प्रकृति यही चेष्टा करती है कि हर प्राणी स्वस्थ बच्चों को जन्म दे, अतः यदि वह देखती है कि भ्रूण में कोई कमी है तो उसे गर्भाशय से बाहर निकाल देती है। अतः प्रारम्भिक गर्भावस्था में गर्भस्राव द्वारा निकला भ्रूण वह है जो अगर पैदा भी हो जाता तो शायद ज्यादा दिनों जिन्दा नहीं रहता या वह लूला, लंगड़ा या कुबड़ा अथवा विकृत रूप का अथवा सदा रोगी रहने वाला होता।

आमतौर पर गर्भस्राव का पहला लक्षण यह है कि दूसरे या तीसरे महीने में गर्भवती की योनि से चमकदार लाल रंग का थोड़ा-सा रक्त निकलता है। यह रक्त दिन में एक बार निकल सकता है और स्त्री को इससे कोई पीड़ा नहीं होती। यदि इसकी उपेक्षा की जाए तो अगले दिन थोड़ा ज्यादा रक्त निकल सकता है और इसके पश्चात् रक्त और भारी मात्रा में निकल सकता है और स्त्री के पेडू में ऐंठन भी हो सकती है। यदि अब भी इसका इलाज न किया

जाए तो कुछ समय पश्चात् प्रसव के समय जैसी पीड़ा के साथ भ्रूण बाहर निकल सकता है।

गर्भस्राव की आशंका (Threatened abortion)—कई बार ऐसा होता है कि गर्भ गिर जाने की आशंका हो जाती है जबकि वास्तव में गर्भ गिरने वाला नहीं होता है। इस दशा में रोगिणी को थोड़ा-सा रक्त जाता है परन्तु रक्त निकलते समय दर्द नहीं होता। रोगिणी को चारपाई के पायंतानों के नीचे एक-एक ईंट रख कर पायंताने ऊंचे करके आराम से खाट पर लेटे रहना चाहिए। उसके इस तरह एक-दो दिन विश्राम करने से भ्रूण गर्भाशय से अलग नहीं होता तथा और कोई बात भी नहीं होती। इसके बाद गर्भावस्था के शेष दिन पूरे होने पर सामान्य बच्चे का जन्म होता है।

अनिवार्य गर्भस्राव—परन्तु यदि रक्त निकलना प्रारम्भ होने के साथ ही पेडू में प्रसव पीड़ा जैसी ऐंठन होने लग जाए तो समझ लेना चाहिए कि गर्भ निश्चित रूप से गिर ही जाएगा क्योंकि ऐसी पीड़ा तब ही उत्पन्न होती है जब गर्भाशय का मुख खुल जाता है।

चिकित्सा—गर्भवती स्त्री की योनि से रक्त जाने लगे तो तुरन्त ही डाक्टर को दिखाना चाहिए क्योंकि उचित चिकित्सा तुरन्त होने से गर्भस्राव होना रुक सकता है। कई स्त्रियों में गर्भस्राव एक आदत बन जाती है, इन्हें बार-बार गर्भ-स्राव होता है। गर्भस्राव रोकने के लिए ऐलोपैथी में कई बहुत अच्छी दवाएं निकल आई हैं जिनमें एक दवा है आर्गेनन कम्पनी की बनी हुई 'जेस्टानिन' (Gestanin) जो अत्यन्त गुणकारी सिद्ध हुई है। गर्भस्राव के प्रथम लक्षण अर्थात् योनि से रक्त स्राव होते ही इस दवा की एक-एक टेब्लेट दिन में 3 या 4 बार खिलाई जाती है। यह दवा एक हफ्ते तक के लिए दी जाती है। जिन स्त्रियों को बार-बार गर्भस्राव हो जाता हो उन्हें गर्भ ठहरते ही प्रतिदिन एक या दो टेब्लेट खाते रहना चाहिए। जिस महीने में साधारणतः उनको गर्भस्राव हुआ करता है उसके भी एक महीने बाद तक इसी प्रकार सुबह-शाम एक-एक टेब्लेट खाते रहना चाहिए।

साधारणतः गर्भस्राव होने की आशंका पर डाक्टर लोग रोगिणी को पूर्ण विश्राम की सलाह देते हैं तथा स्टिप्टोविट (Styptovit) की एक-एक टिकिया दिन में तीन बार सेवन करने की सलाह देते हैं। यदि इससे रक्त स्राव में कमी न

हो तो प्रोल्यूटॉन डिपो (Proluton Depo) निर्माता शेरिंग के एक-एक ऐम्पूल का रोजाना एक इन्जेक्शन तीन दिन तक देने से लाभ हो जाता है। इसका इन्जेक्शन मांस पेशी में (I. M.) लगाया जाता है। यह अत्यन्त ही विश्वसनीय औषधि है।

गर्भावस्था में योनि से निकलने वाले रक्त को रोकने के लिए यह देशी नुस्खा बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ है। यदि आस-पास कोई चिकित्सक न मिल सके तो इसका इमरजेंसी की दशा में प्रयोग किया जा सकता है। नुस्खा यह है :

ताजा परन्तु सूखी हुई कबूतर की बीट को पीस कर कपड़छन करके शीशी में भर कर रख लें। यह दवा दो-दो ग्राम सुबह और शाम को ताजा पानी के साथ खिला दें। दूसरे दिन ही रक्त स्राव कम हो जाता है और 5-6 दिन में बिल्कुल बन्द हो जाता है। यह दवा केवल अस्थाई लाभ के लिए है। इस दौरान किसी चिकित्सक को दिखाया जा सकता है।

पूर्व-गर्भाक्षेपक (Pre-eclampsia)

यह एक गम्भीर रोग है जो गर्भ के 28वें सप्ताह के बाद आरम्भ होता है। इस रोग में ब्लडप्रैशर सामान्य सीमा 140/90 से बढ़ जाता है, मूत्र में ऐल्ब्यूमेन आने लगता है। चेहरे, हाथों और टांगों पर शोफ (सूजन) हो जाता है तथा रोगिणी का वजन ज्यादा बढ़ जाता है। इन रोगिणियों की चिकित्सा तुरन्त ही किसी हस्पताल में करवानी चाहिए क्योंकि हस्पताल में ही अच्छी तरह इसका इलाज हो सकता है।

चिकित्सा—रोगिणी को दोपहर के बाद दो-तीन घण्टे चारपाई पर खामोश लेटे रहना चाहिए। यदि केवल टांगों पर ही सूजन है तब तो शायद इतनी गम्भीर बात नहीं है परन्तु चेहरे और हाथों पर भी सूजन आ गई है और सिर दर्द तथा आंखों से ठीक तरह दिखाई नहीं देता तो मामला गम्भीर समझते हुए तुरन्त किसी डाक्टर या लेडी डाक्टर को दिखाना चाहिए।

उसके भोजन में नमक कम-से-कम रहे तथा अण्डे और दूध जैसे प्रोटीन युक्त पदार्थ अधिक मात्रा में सेवन कराना चाहिए। शरीर की सूजन कम करने के लिए डाक्टर लोग ऐसीड्रेक्स (Esidrex) अथवा लेसिक्स (Lasix) की केवल एक टेब्लेट प्रातःकाल सप्ताह में केवल तीन दिन (बीच में एक एक दिन छोड़कर) देते हैं। इस औषधि से मूत्र बहुत आता है जिससे सूजन कम हो जाती है। ब्लड प्रैशर कम करने के लिए सर्पगन्धा का योग सर्पासिल (Serpasil) की 0.25 मिली ग्राम

जाए तो कुछ समय पश्चात् प्रसव के समय जैसी पीड़ा के साथ भ्रूण बाहर निकल सकता है।

गर्भस्राव की आशंका (Threatened abortion)—कई बार ऐसा होता है कि गर्भ गिर जाने की आशंका हो जाती है जबकि वास्तव में गर्भ गिरने वाला नहीं होता है। इस दशा में रोगिणी को थोड़ा-सा रक्त जाता है परन्तु रक्त निकलते समय दर्द नहीं होता। रोगिणी को चारपाई के पायंतानों के नीचे एक-एक ईंट रख कर पायंताने ऊंचे करके आराम से खाट पर लेटे रहना चाहिए। उसके इस तरह एक-दो दिन विश्राम करने से भ्रूण गर्भाशय से अलग नहीं होता तथा और कोई बात भी नहीं होती। इसके बाद गर्भावस्था के शेष दिन पूरे होने पर सामान्य बच्चे का जन्म होता है।

अनिवार्य गर्भस्राव—परन्तु यदि रक्त निकलना प्रारम्भ होने के साथ ही पेड़ू में प्रसव पीड़ा जैसी ऐंठन होने लग जाए तो समझ लेना चाहिए कि गर्भ निश्चित रूप से गिर ही जाएगा क्योंकि ऐसी पीड़ा तब ही उत्पन्न होती है जब गर्भाशय का मुख खुल जाता है।

चिकित्सा—गर्भवती स्त्री की योनि से रक्त जाने लगे तो तुरन्त ही डाक्टर को दिखाना चाहिए क्योंकि उचित चिकित्सा तुरन्त होने से गर्भस्राव होना रुक सकता है। कई स्त्रियों में गर्भस्राव एक आदत बन जाती है, इन्हें बार-बार गर्भ-स्राव होता है। गर्भस्राव रोकने के लिए ऐलोपैथी में कई बहुत अच्छी दवाएं निकल आई हैं जिनमें एक दवा है आर्गेनन कम्पनी की बनी हुई 'जेस्टानिन' (Gestanin) जो अत्यन्त गुणकारी सिद्ध हुई है। गर्भस्राव के प्रथम लक्षण अर्थात् योनि से रक्त स्राव होते ही इस दवा की एक-एक टेब्लेट दिन में 3 या 4 बार खिलाई जाती है। यह दवा एक हफ्ते तक के लिए दी जाती है। जिन स्त्रियों को बार-बार गर्भस्राव हो जाता हो उन्हें गर्भ ठहरते ही प्रतिदिन एक या दो टेब्लेट खाते रहना चाहिए। जिस महीने में साधारणत: उनको गर्भस्राव हुआ करता है उसके भी एक महीने बाद तक इसी प्रकार सुबह-शाम एक-एक टेब्लेट खाते रहना चाहिए।

साधारणत: गर्भस्राव होने की आशंका पर डाक्टर लोग रोगिणी को पूर्ण विश्राम की सलाह देते हैं तथा स्टिप्टोविट (Styptovit) की एक-एक टिकिया दिन में तीन बार सेवन करने की सलाह देते हैं। यदि इससे रक्त स्राव में कमी न

हो तो प्रोल्यूटॉन डिपो (Proluton Depo) निर्माता शेरिंग के एक-एक ऐम्पूल का रोजाना एक इन्जेक्शन तीन दिन तक देने से लाभ हो जाता है। इसका इन्जेक्शन मांस पेशी में (I. M.) लगाया जाता है। यह अत्यन्त ही विश्वसनीय औषधि है।

गर्भावस्था में योनि से निकलने वाले रक्त को रोकने के लिए यह देशी नुस्खा बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ है। यदि आस-पास कोई चिकित्सक न मिल सके तो इसका इमरजेंसी की दशा में प्रयोग किया जा सकता है। नुस्खा यह है:

ताजा परन्तु सूखी हुई कबूतर की बीट को पीस कर कपड़छन करके शीशी में भर कर रख लें। यह दवा दो-दो ग्राम सुबह और शाम को ताजा पानी के साथ खिला दें। दूसरे दिन ही रक्त स्राव कम हो जाता है और 5-6 दिन में बिल्कुल बन्द हो जाता है। यह दवा केवल अस्थाई लाभ के लिए है। इस दौरान किसी चिकित्सक को दिखाया जा सकता है।

पूर्व-गर्भाक्षेपक (Pre-eclampsia)

यह एक गम्भीर रोग है जो गर्भ के 28वें सप्ताह के बाद आरम्भ होता है। इस रोग में ब्लडप्रैशर सामान्य सीमा 140/90 से बढ़ जाता है, मूत्र में ऐल्ब्यूमेन आने लगता है। चेहरे, हाथों और टांगों पर शोफ (सूजन) हो जाता है तथा रोगिणी का वजन ज्यादा बढ़ जाता है। इन रोगिणियों की चिकित्सा तुरन्त ही किसी हस्पताल में करवानी चाहिए क्योंकि हस्पताल में ही अच्छी तरह इसका इलाज हो सकता है।

चिकित्सा—रोगिणी को दोपहर के बाद दो-तीन घण्टे चारपाई पर खामोश लेटे रहना चाहिए। यदि केवल टांगों पर ही सूजन है तब तो शायद इतनी गम्भीर बात नहीं है परन्तु चेहरे और हाथों पर भी सूजन आ गई है और सिर दर्द तथा आंखों से ठीक तरह दिखाई नहीं देता तो मामला गम्भीर समझते हुए तुरन्त किसी डाक्टर या लेडी डाक्टर को दिखाना चाहिए।

उसके भोजन में नमक कम-से-कम रहे तथा अण्डे और दूध जैसे प्रोटीन युक्त पदार्थ अधिक मात्रा में सेवन कराना चाहिए। शरीर की सूजन कम करने के लिए डाक्टर लोग ऐसीड्रेक्स (Esidrex) अथवा लेसिक्स (Lasix) की केवल एक टेब्लेट प्रातःकाल सप्ताह में केवल तीन दिन (बीच में एक एक दिन छोड़कर) देते हैं। इस औषधि से मूत्र बहुत आता है जिससे सूजन कम हो जाती है। ब्लड प्रैशर कम करने के लिए सर्पगन्धा का योग सर्पासिल (Serpasil) की 0.25 मिली ग्राम

की एक-एक टेब्लेट सुबह शाम देते रहते हैं। इन टेब्लेट्स का प्रयोग प्रसव की सम्भावित तिथि से दो सप्ताह पहले बन्द कर दिया जाता है।

कैल्सियम की कमी

गर्भावस्था के दिनों में बढ़ता हुआ भ्रूण अपनी हड्डियां बनाने के लिए भारी मात्रा में कैल्सियम अपनी मां के शरीर से खींचता है। यदि मां के शरीर में कैल्सियम की कमी है तो गर्भवती के दांत प्रायः हिलने लगते हैं या कमजोर हो जाते हैं। उसकी हड्डियां भी कैल्सियम खिंच जाने के कारण कमजोर हो सकती हैं। अतः गर्भवती स्त्रियों को कैल्सियम की कमी पूरा करने के लिए रोजाना कैल्सियम की टिकिया खाते रहना चाहिए।

एक अण्डे के छिलके को बिल्कुल बारीक मैदा जैसा पीसकर आटे में मिलाकर इसकी रोटियां खाती रहें तो उनको काफी मात्रा में कैल्सियम मिल जाएगा।

जो स्त्रियां दिन में कई बार पान खाती हैं उन्हें पान के साथ इतना चूना मिल जाता है कि अलग से टेब्लेट के रूप में सेवन करने की जरूरत नहीं है।

कलेजे पर जलन

यह शिकायत गर्भावस्था के बाद के महीनों में प्रायः पैदा होती है। इस समय गर्भाशय बढ़कर आमाशय पर दबाव डालता है जिससे आमाशय में उपस्थित एसिड ऊपर अन्न नली में पहुंच जाता है जिससे इसमें जलन होने लगती है। यह जलन खाना खाने के बाद रात्रि में उस समय ज्यादा होती है जब रोगिणी लेटती है।

इन रोगिणियों को रात्रि में सोते समय तीन-चार तकिये सिर के नीचे इस प्रकार रख लेना चाहिए कि सिर से लेकर कंधे तक का भाग पेट की अपेक्षा कुछ ऊंचाई पर रहे। इनको अपने पास हमेशा फिलिप्स के 'मिल्क आफ मैगनेशिया' की कुछ टेब्लेट्स भी रखना चाहिए। कलेजे में जलन होने पर दो टिकियां चाब कर एक घूंट पानी पी लेने से तुरन्त जलन मिट जाती है क्योंकि यह एसिड को काट देती है। ये टेब्लेट्स बहुत सस्ती होती हैं।

ग्रामीण स्त्रियों को खाने का सोडा (मीठा सोडा) अपने घर में जरूर रखना चाहिए। खट्टी डकारें आने या कलेजे में जलन होने पर पौन या एक गिलास पानी में एक या पौन चाय का चम्मच यह सोडा घोल कर पी लेने से तुरन्त ही जलन

मिट जाती है। सोडे का प्रयोग रोजाना नहीं करना चाहिए, परन्तु दूसरे-तीसरे दिन प्रयोग कर लेने में कोई हर्ज भी नहीं है।

कब्ज

गर्भावस्था की यह एक आम शिकायत है और प्रायः पहले महीने से ही शुरू हो जाती है। कब्ज से बचने के लिए रोटी के साथ हरे पत्तों वाला साग पतला या भूजी बनाकर खूब खाना चाहिए। मैदा की बनी चीजों से बचना चाहिए। गर्मियों के दिनों में काफी मात्रा में पानी पीना चाहिए। यदि कब्ज बराबर रहने लगे तो रात्रि में सोते समय मिल्क आफ मैगनेशिया की पांच-छः टेब्लेट चबाकर खा लें और दो-तीन घूंट पानी पी जाएं। सुबह खुलकर टट्टी आ जाती है। गर्भवतियों के लिए यह बड़ी सुरक्षित दवा है। साधारणतः रात्रि में 5-10 मुनक्के दूध में उबाल कर पी जाने से भी सुबह दस्त खुलकर आ जाता है। यदि इससे लाभ न हो तो रात्रि में सोते समय ग्लैक्सेना (Glaxenna) या हरबोलैक्स (Herbolax) की दो गोलियां दी जा सकती हैं। परन्तु इनको कैस्टर आयल या तेज दस्तावर दवाएं नहीं देना चाहिए।

गर्भावस्था में स्वस्थ कैसे रहें?

- ☐ रोजाना नियमित रूप से स्नान करें और दांतों को साफ करें।
- ☐ आपका बच्चा जीवित पैदा हो और कोई मानसिक खराबी लेकर पैदा न हो इसके लिए अपने भोजन में साधारण नमक की जगह आयोडीन मिला हुआ नमक (आयोडाइज्ड साल्ट) का प्रयोग करें।
- ☐ जहां तक सम्भव हो सके औषधियों के प्रयोग से बचें। कुछ औषधियां गर्भ स्थित बच्चे को हानि पहुंचा सकती हैं। आवश्यकता पड़ने पर सिर दर्द व ज्वर के लिए ऐस्प्रिन, कलेजे पर जलन के लिए, सोडा प्रयोग कर सकती हैं।
- ☐ गर्भ के अन्तिम महीने में सम्भोग नहीं करना चाहिए।
- ☐ खसरा के रोगी बच्चों के पास मत जाइए।
- ☐ काम में लगी रहिए, हल्के-फुल्के व्यायाम करती रहें परन्तु ज्यादा थकान से बचें।

६. शिशु पालन

आधुनिक वैज्ञानिक खोजों से पता चला है कि बच्चा रोगों के आक्रमण से बचा रहे और जीवन में मानसिक तथा शारीरिक रूप से स्वस्थ रहे इसके लिए उसे मां का दूध मिलना अत्यन्त ही आवश्यक है। बच्चे को मां का दूध छः महीने तक तो मिलना ही चाहिए।

मां का अपना दूध एक ऐसा प्राकृतिक भाजन है जो बच्चे के पैदा होने के तुरन्त बाद मा के स्तनों में उतरने लगता है। पहले छः महीने में गांवों में रहने वाली हिन्दुस्तानी मां के स्तनों में लगभग 600 मिलीलीटर दूध प्रतिदिन उतरता है जो कि लगभग चार गिलास के बराबर होता है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है मां का दूध कम उतरने लगता है।

बच्चे के पैदा होने के बाद पहले दो दिनों में मां की छाती से एक पीले से रंग का द्रव पदार्थ निकलता है। इस द्रव पदार्थ को कोलोस्ट्रम या खीस कहते हैं। बहुत-सी औरतें सोचती हैं कि यह कोलोस्ट्रम पैदा हुए बच्चे के लिए अच्छा नहीं है। वे अपने बच्चे को यह कोलोस्ट्रम नहीं पिलातीं। पिलाने की बजाये वे इसे फेंक देती हैं।

परन्तु सच बात तो यह है कि कोलोस्ट्रम बच्चे के लिए बहुत उपयोगी पदार्थ है। इस कोलोस्ट्रम में इम्यूनोग्लोबुलिन्स (Immunoglobulins) नामक पदार्थ भरे होते हैं जो कुछ अत्यन्त ही घातक रोगों के जीवाणुओं से बच्चे को सुरक्षा प्रदान करते रहते हैं। अतः यह कोलोस्ट्रम बच्चे को जरूर पिलाना चाहिए। प्रारम्भ के कुछ दिनों में मां के दूध में पोलियो, इन्फ्लुएंजा, पेचिश तथा अन्य भयंकर रोगों से बच्चे की सुरक्षा करने वाले इम्यूनोग्लोबुलिन्स भी काफी मात्रा में होते हैं।

जिन माताओं का अपना दूध कम उतरता है तथा नौकरी पेशा माताओं को ऊपर का दूध पिलाना आवश्यक हो जाता है। इन्हें स्मरण रखना चाहिए कि डिब्बे का दूध प्रयोग करन में तो सुगम है परन्तु यह बहुत महंगा बैठता है। दूसरी बात यह है कि फैक्ट्री में इस दूध पर इतनी क्रियाएं की जाती हैं कि इसके पौष्टिक तत्व समाप्त हो जाते हैं।

अत: माताओं को चाहिए कि डिब्बे के दूध के स्थान पर सीधा भैंस का दूध बच्चे को पिलाएं। इससे बच्चा अच्छी तरह पुष्ट होगा। भैंस का दूध हर जगह आसानी से मिल जाता है। इसे नीचे दी हुई तालिका के हिसाब से पानी मिलाकर पिलाना चाहिए—

बच्चे की आयु	एक बार की मात्रा			कितनी बार पिलाएं
	दूध	पानी	चीनी (चाय का चम्मच)	
2 मास की आयु तक	1-½ औंस	1-½ औंस	3/4	6 बार
3-4 मास	3 औंस	2 औंस	1-3/4	6 बार
5 मास	4 औंस	1 औंस	1-½	5 बार
6 मास	7 औंस	नहीं	2	4 बार
7-8 मास	8 औंस	नहीं	2	4 बार

दूध को ज्यादा न औटायें। केवल एक उबाल देना काफी है।

बच्चों को दूध पिलाने का कार्यक्रम इस प्रकार बनाया जाए कि प्रतिदिन अन्तिम बार रात्रि में 10 बजे उसे दूध मिले। इसके बाद रात्रि में उसे दूध न दिया जाए। ऐसा करने से माता तथा बच्चे दोनों को रात्रि में भरपूर नींद लेने का

अवसर मिल जाता है। यदि बच्चा रात्रि में दूध मांगें तो उबला हुआ पानी जो मां के पास रखा हो पिला देना चाहिए। कुछ दिनों में बच्चा इस कार्यक्रम का अभ्यस्त हो जाता है।

माताओं को यह भी सलाह दी जाती है कि वे बोतल से दूध पिलाने की बजाए चम्मच कटोरी से दूध पिलाने की आदत डालें। कारण यह है कि चाहे कितनी भी सावधानी क्यों न बरती जाए, बोतल को पूर्णतः साफ और जीवाणु मुक्त रखना असम्भव होता है अतः जीवाणु बच्चों के पेट में जाकर दस्त और उल्टियां तथा अन्य रोग उत्पन्न कर देते हैं।

यदि माताएं आरम्भ से ही बच्चों के स्वास्थ्य का ध्यान रखें तो बच्चों को रोग बहुत ही कम होते हैं। बच्चों को स्वस्थ रखने के लिए नींद की बहुत आवश्यकता होती है अतः उन्हें खूब सोने देना चाहिए। बच्चों को प्रतिदिन हल्की धूप में थोड़ी देर तक जरूर रखना चाहिए। सूरज के प्रकाश में अल्ट्रावायलेट नामक जामनी रंग की किरणें होती हैं; जो शरीर पर पड़ने से शरीर निरोग रहता है और शरीर की त्वचा इन किरणों की सहायता से अपने अन्दर विटामिन 'डी' का निर्माण करने लगती है जिससे बच्चे की हड्डियां मजबूत बनती हैं। याद रखना चाहिए कि जिन बच्चों को धूप नहीं मिलती उनकी हड्डियां कमजोर रह जाती हैं। इस रोग में किसी भी दवा से इतना लाभ नहीं होता जितना प्राकृतिक धूप से। कमजोर बच्चों को गुनगुने पानी से स्नान कराएं परन्तु जैसे ही बच्चा तन्दुरुस्त हो जाए उसे बारहों महीने ताजे पानी से स्नान करने की आदत डालनी चाहिए। कारण यह है कि जिन बच्चों को रोजाना गर्म पानी से स्नान कराया जाता है उन्हें बार-बार सर्दी, जुकाम, खांसी का रोग होता रहता है। स्नान कराने से पहले चाहें तो बच्चे के शरीर पर तेल की मालिश कर सकती हैं। मालिश के लिए तिल का तेल (मीठा तेल), मूंगफली का तेल या नारियल का तेल प्रयोग करना चाहिए। सरसों का तेल बच्चों की त्वचा के लिए कुछ तेज होता है।

बच्चों की आयु चार महीने की हो जाने पर मां का दूध इतना नहीं उतरता कि बच्चे की समुचित मात्रा में भोजन मिल सके। इस समय से उसे मुलायम भोजन देना शुरू कर देना चाहिए। बच्चों के लिए डिब्बा बन्द खाद्य पदार्थों की जबरदस्त विज्ञापनबाजी आजकल हो रही है। इनके जाल में फंसकर डिब्बा बन्द खाद्य मत खरीदिए क्योंकि इस भोजन पर फैक्ट्री में इतने उपचार किए जाते हैं

कि यह बिल्कुल बेजान हो जाता है। बच्चों को उसी भोजन में से खिलाइये जो आप खाते हैं। शुरू में तो घर के लिए रांधे हुए चावल में से जरा से लेकर चम्मच से इन्हें मसलकर जरा-सा दूध और चीनी मिलाकर बच्चे को दे दें। आटे या सूजी का जरा-सा हलुआ या खीर दे सकते हैं। यह भोजन बच्चे को चम्मच से ही खिलाना चाहिए। प्रारम्भ में एक-दो चम्मच यह भोजन दें। कुछ दिनों में बच्चा दिन भर में आधा कप तक हलुआ या पूरा केला खाने लगेगा।

छोटे बच्चे का आमाशय भी छोटा होता है अतः उसे थोड़ा-थोड़ा करके कई बार भोजन देना चाहिए। परन्तु भोजन काफी मात्रा में होना चाहिए। बच्चे की आयु छः महीने की होने पर उसे दिन में पांच-छः बार भोजन देना चाहिए। छः महीने के बच्चे को बिना मसाले की दाल जरा-सा घी डालकर चावल इसमें मथकर देना चाहिए। केला उसके लिए सस्ता और अच्छा भोजन है। उसे आलू, पालक, घीया, टिण्डा आदि सब्जी भी दे सकते हैं। शुरू में मसलकर छानकर दें ताकि छिलका या बीज बच्चों को न मिले। छः-सात महीने बाद बारीक मसलने या छानने की भी जरूरत नहीं है।

पहले वर्ष में बच्चा बहुत तेजी से बढ़ता है, जन्म के समय के वजन का तीन गुना वजन उसका हो जाता है इसलिए उसे यदि पूरा भोजन नहीं मिलेगा तो वह कमजोर हो जाएगा। बहुत-सी माताएं सोचती हैं कि बच्चा छोटा-सा तो है उसे ज्यादा खाने की जरूरत नहीं है। याद रखिए एक वर्ष की आयु के बच्चे को अपनी मां से आधे भोजन की आवश्यकता होती है। एक वर्ष की आयु के बच्चे को प्रतिदिन इतना भोजन चाहिए—

2 कप चावल, 2 छोटी रोटियां, एक कप दाल, आधा कप हरे पत्तें वाली सब्जियां, थोड़ा-सा घी, थोड़ा गुड़, थोड़ा-सा दूध और मौसम का कोई एक फल।

कुछ बच्चों को गेहूं, अच्छी तरह हज्म नहीं होता अतः चावल वह भी बिना पालिश का देना चाहिए। उपरोक्त भोजन उसे थोड़ा-थोड़ा करके दिन में पांच-छः बार देना चाहिए।

साल भर के बच्चे को अगर वह सब चीजें खा रहा है तो दिन भर में आधा किलो से अधिक दूध की जरूरत नहीं है।

बच्चों को रोजाना हरे पत्ते वाली सब्जियां मिलना बड़ा जरूरी है ताकि उसके शरीर में विटामिन ए तथा लोहे की कमी न रहे।

यदि बच्चे का विकास ठीक ढंग से हो रहा है तो उसका वजन नीचे लिखा या इससे अधिक होना चाहिए—

6 महीने की आयु	6 किलो
9 महीने की आयु	7 किलो
एक वर्ष	8 किलो
$1\frac{1}{2}$ वर्ष	9 किलो
2 वर्ष	10 किलो

अगर चाहें तो बच्चे को एक-दो महीने की आयु से फलों का रस देना शुरू कर सकते हैं। प्रायः सन्तरे या मौसमी का रस दिया जाता है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि मां का दूध पीने वाले बच्चों के लिए फलों का रस देना जरूरी नहीं क्योंकि जो विटामिन इन फलों में हैं वे मां के दूध में भी होते हैं। अतः गरीब आदमियों को बच्चों के लिए ऐसे महंगे फल खरीदने की जरूरत नहीं।

छोटे बच्चों को पानी पीने की आवश्यकता होती है विशेष कर गर्मियों के मौसम में। छोटा बच्चा यह तो नहीं बता सकता कि वह प्यासा है परन्तु दिन में कई बार उसे पानी पिलाना चाहिए। बच्चे का पानी साफ कुएं से लाना चाहिए, यदि हो सके तो उबाल कर ढक कर रख दें और जब भी पिलाना हो इसी में से पिला दें।

साधारण प्रकार के दस्तों, बुखार तथा अन्य साधारण रोगों में बच्चे की मां को उन्हें अपना दूध पिलाना बन्द नहीं करना चाहिए। माता का दूध पीने से बच्चे में शक्ति आती है और वह शीघ्र ठीक हो जाता है। रोगी बच्चे को दिन में कई बार स्वच्छ पानी पिलाना जरूरी है।

बच्चों को दस्त अथवा उल्टियां लग जाने पर उसके शरीर से बहुत-सा पानी निकल जाता है। इस समय उसे दिन में कई बार फालतू मात्रा में पानी पिलाना चाहिए अन्यथा वह रोग से नहीं बल्कि शरीर में पानी की कमी हो जाने (इसे जलाल्पता या Dehydration कहते हैं) से मर जाएगा। यदि वह उल्टियां कर रहा हो तब भी थोड़ा-थोड़ा पानी उसे बार-बार देते रहना जरूरी है।

अधिकतर डाक्टर लोग यह गलती कर बैठते हैं कि ज्वर व दस्त आदि के रोगी बच्चे की माता से कह देते हैं कि वह पानी में ग्लूकोज़ घोलकर यह पानी थोड़ी-थोड़ी देर बाद बच्चे को पिलाती रहे। माता यह समझते हुए कि ग्लूकोज बड़ी

ताकत देने वाली चमत्कारी वस्तु है बच्चे को बड़ी खुशी से ग्लूकोज मिला पानी पिलाती रहती है। इसका फल उल्टा होता है। ग्लूकोज बच्चे के शरीर में से और भी पानी खींचकर बड़ी आंत में एकत्रित कर देता है तथा इस प्रकार जलाल्पता और भी गम्भीर हो जाती है।

माताओं को इतने मंहगे ग्लूकोज पर पैसा फूंकने की कोई जरूरत नहीं है। उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि चीनी और गुड़ भी पेट में जाकर ग्लूकोज बन जाते हैं। इन बच्चों में पानी की कमी न होने देने के लिए आसान नुस्खा यह है कि एक गिलास स्वच्छ पानी में एक चुटकी नमक और एक बड़ा चम्मच चीनी (या गुड़ की डली) मिलाकर यह मीठा-नमकीन पानी दिन में कई बार पिलाती रहें। दस्तों के रोगी बच्चों के लिए यह पानी पिलाना बहुत जरूरी है।

ज्वर या साधारण रोगों में ग्रस्त बच्चे को मुलायम भोजन देते रहना चाहिए ताकि बच्चा कमजोर न हो। भोजन देते रहने से बच्चों को शक्ति मिलती रहती है और वह जल्दी रोग से मुक्त हो जाता है। अगर बच्चे को दस्त हो रहे हों तब भी उसे दलिया या खिचड़ी आदि मुलायम भोजन देते रहना चाहिए। भोजन देना बन्द न करें।

माता को अपना दूध बच्चे को डेढ़-दो वर्ष की आयु तक पिलाते रहना चाहिए। बेशक चाहे दिन में एक-दो बार ही पिलाया जाए। माता का दूध बच्चे के स्वास्थ्य के लिए बहुत जरूरी है।

बच्चे स्वस्थ कैसे रहें ?

- ☐ बच्चे स्वस्थ और रोग मुक्त पैदा हों इसके लिए दो सन्तानों के जन्म के बीच में कम-से-कम तीन वर्ष की अवधि अवश्य रखिए।
- ☐ बच्चों को क्षय रोग, काली खांसी, डिफ्थीरिया, टेटनस और पोलियो आदि के टीके अवश्य लगवा लें। इसमें आलस्य या लापरवाही न करें।
- ☐ प्रयत्न कीजिए कि 35 वर्ष की आयु के पश्चात् बच्चे न पैदा किए जाएं क्योंकि इस आयु के बाद पैदा हुए बच्चों में जन्म से ही मानसिक या शारीरिक विकृतियां होने की सम्भावना बढ़ती जाती है।

१०. रति रोग

जो अभागे पुरुष रति रोगों के संक्रमण में ग्रस्त हो जाते हैं उनके शरीर में कभी-कभी ये रोग इतना विष घोल देते हैं कि उन्हें जीवन भर शारीरिक और मानसिक यातनाएं भोगनी पड़ती हैं। प्रारंभिक अवस्था में जबकि रोग को शीघ्र ही नष्ट करना संभव होता है उस समय प्रायः रोगी चिकित्सक के पास जाने से इस लिए घबराता है कि वह जो पाप कर्म करके आया है डाक्टर उसकी कलई खोल देगा। रोगी इस बात को महसूस नहीं करता कि यदि रोग का संक्रमण शरीर में अधिक फैलने से पहले ही चिकित्सा शुरू हो जाए तो वह बहुत जल्दी रोग मुक्त हो जायेगा। रोग का उचित उपचार देर से शुरू करने से एक खतरा यह भी रहता है कि इतने समय में वह इस रोग को अपनी पत्नी में अथवा अन्य व्यक्तियों में पहुंचा सकता है और एक की बजाए अनेक जीवन नष्ट हो सकते हैं।

रति रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु मानव शरीर से बाहर जीवित नहीं रह सकते अतः ये एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में केवल शारीरिक सम्पर्क होने पर ही पहुंचते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि ये रोग केवल मैथुन करते समय ही एक से दूसरे को लगते हैं। इन रोगों का प्रसार मुख्य रूप से वैश्याओं द्वारा होता है। अधिकांश वैश्याएं किसी न किसी रति रोग की रोगिणी होती हैं और इनसे संभोग करने वाले में इन रोगों के जीवाणु पहुंच कर उसे रोगी बना देते हैं।

यदि कोई व्यक्ति किसी रति रोग में ग्रस्त हो जाये तो उसे झूठी शर्म त्याग कर किसी बड़े डाक्टर या किसी सरकारी अस्पताल में जाकर तुरन्त अपना इलाज कराना चाहिए। इश्तहार बाज हकीम डाक्टरों के चक्करों में नहीं फंसना चाहिए। नीचे लिखे रति रोग ही अधिकतर व्यक्तियों को होते हैं :

सूजाक (Gonarrhoea)

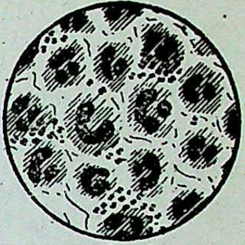

सूजाक के जीवाणु

इस रोग के लक्षण रोग ग्रस्त स्त्री के साथ मैथुन करने के दूसरे से लेकर पांचवें दिन तक प्रकट हो जाते हैं वैसे कई बार अधिक समय भी लग जाता है। पुरुषों में रोग के लक्षण ये होते हैं—पेशाब करते हुए बेहद जलन और पीड़ा होती है, शिश्न में से पीप की बूंदें निकलती हैं, कभी-कभी पेशाब बन्द भी हो जाता है।

स्त्रियों को सूजाक हो जाने पर कई बार उपरोक्त लक्षण स्पष्ट नहीं दिखाइ देते अलबत्ता किसी-किसी को पेशाब करते समय पीड़ा हो सकती है या योनि से पीप जैसा स्राव निकल सकता है। बहुत-सी स्त्रियों में महीनों-वर्षों तक सूजाक रोग के लक्षण ऊपर से दिखाई नहीं पड़ते परन्तु जीवाणु शरीर के अन्दर गर्भाशय आदि में पहुंच कर वहां घर बना लेते हैं जिससे उसके पैदा होने वाला बच्चा अन्धा हो सकता है। इन्हीं जीवाणुओं के संक्रमण से बहुत-सी स्त्रियों के गर्भाशय व डिम्ब-वाहिनियों आदि में सूजन आ जाती है जिससे स्त्रियों को बहुत कष्ट उठाना पड़ता है और बहुत-सी स्त्रियां बांझ भी हो जाती हैं। इससे स्पष्ट है कि पुरुष की अपेक्षा स्त्री का इस रोग में ग्रस्त हो जाना अधिक विनाशकारी हो सकता है।

चिकित्सा—सूजाक की चिकित्सा के लिए सबसे अच्छी औषधि पेनिसिलिन ही है इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसके केवल दो-तीन इन्जेक्शन से ही रोग समाप्त हो जाता है।

० यदि किसी आदमी ने सूजाक ग्रस्त होने के बाद अपनी पत्नी से भी संभोग किया है तो भले ही उसकी पत्नी में कोई लक्षण इस रोग के न दिखाई दे रहे हों परन्तु फिर भी उसकी डाक्टरी परीक्षा होना बहुत जरूरी है हो सकता है उसके अन्दर ही अन्दर रोग के जीवाण हों जिनका इलाज न होने पर पति को दोबारा यह रोग लग सकता है या वह बांझ हो सकती है।

चेतावनी—जिस व्यक्ति को सूजाक हो उसे इसके साथ ही आतशक (सिफलिस) भी हो सकती है। भले ही उसे इसका पता न चले। अतः डाक्टरी परीक्षा में आतशक के जीवाणुओं को भी देखना पड़ता है। सौभाग्यवश पेनिसिलिन

के जो इन्जेक्शन सूजाक के लिए लगाए जाते हैं उन्हीं से आतशक के जीवाणु भी मर जाते हैं।

आतशक (Syphilis)

यह भी एक बहुत प्रचलित रति रोग है परन्तु यह सूजाक से कई गुना ज्यादा खतरनाक है। यह रोग पेच जैसी बलदार आकृति के जीवाणु द्वारा फैलता है। इस जीवाणु को 'ट्रेपोनीमा पैलीडम' कहते हैं। रोग के लक्षण इस प्रकार होते हैं—

रोग ग्रस्त वेश्या के साथ मैथुन करने के 2 से लेकर 5 सप्ताह के अन्दर रोग का प्रथम लक्षण प्रकट होता है। यह बटन की शक्ल की एक फुड़िया होती है जिसे शैंकर कहते हैं। यह शैंकर प्रायः शिश्न की सुपारी पर निकलता है परंतु कभी-कभी मुंह पर, होंठों पर, गुदा पर या उंगलियों पर भी निकल सकता है। इस फुड़िया में रोग के जीवाणु होते हैं जो बड़ी जल्दी एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में पहुंच जाते हैं। इस फुड़िया में प्रायः पीड़ा नहीं होती। यदि यह फुड़िया योनि के अन्दर हो तो अक्सर स्त्री को पता भी नहीं चलता कि उसे आतशक हो गया है क्योंकि इसमें पीड़ा नहीं होती परंतु उससे मैथुन करने वाला रोगग्रस्त हो सकता है।

यह फुड़िया कुछ दिनों रहती है फिर बिना किसी इलाज के अपने आप ही ठीक हो जाती है लेकिन इसमें मौजूद असंख्य जीवाणु शरीर के अन्दर घुसकर रोग बढ़ाते चले जाते हैं।

अब हफ्तों या महीनों बाद सिफलिस की दूसरी अवस्था शुरू होती है। रोगी को बुखार आ सकता है, गला खराब हो सकता है, मुंह में छाले हो सकते हैं, पूरे शरीर पर पीड़ा दायक ददोरे निकल आते हैं या गोल-गोल चकत्ते पित्ती की तरह उछल आते हैं। प्रायः ये लक्षण भी अपने आप चले जाते हैं और व्यक्ति समझता है कि वह शायद अब ठीक हो गया है परंतु रोग अन्दर बढ़ता जाता है और फिर कुछ महीनों या वर्षों बाद सिफलिस की तृतीय भयंकर अवस्था प्रकट होती है जिसमें आदमी के शरीर पर लकवा मार सकता है, रोगी पागल हो सकता है या अचानक बैठे-बिठाए मर जाता है।

चेतावनी—कई बार ऐसा होता है कि आतशक का प्राथमिक लक्षण अर्थात् शैंकर जनन अंग पर निकलता ही नहीं बल्कि कई महीने बाद सिफलिस की दूसरी अवस्था के लक्षण जैसे त्वचा पर गोल-गोल चकत्ते निकलना, मुंह में छाले, बाल

झड़ना आदि प्रकट होते हैं। किसी-किसी में ये लक्षण इतने हल्के रूप में होते हैं कि रोगी को संदेह तक नहीं होता कि वह आतशक का रोगी है।

चिकित्सा

इस रोग के इलाज में भी सर्वश्रेष्ठ औषधि पेनिसिलिन ही है जिसके दो-तीन इन्जेक्शनों से ही रोग जड़ से समाप्त हो जाता है।

आतशक के रोगी की पत्नी का भी इलाज होना चाहिए अन्यथा उसके बच्चे अंधे-लूले पैदा हो सकते हैं या पेट में बच्चा मर सकता है या वह बांझ हो सकती है या पुरुष की तरह पागल होकर मर सकती है।

आतशक के रोगी के खून की जांच हर तीन-तीन महीने या अन्य उचित अवधि के पश्चात दो वर्ष तक होती रहनी चाहिए और रोगी को उस समय तक विवाह नहीं करना चाहिए जब तक डाक्टर उसे पूर्ण रूप से रोग मुक्त घोषित न कर दें।

लिम्फोग्रेनुलोमा वेनेरियम

इस रति रोग में जांघों के बीच में स्थितयां लसीका ग्रन्थियां सूज आती हैं और फिर फट जाती हैं। इनमें से पीप बहती है, फिर उन पर पपड़ी जम जाती है और वे फिर से फट जाती हैं। इन गांठों को बद (Bubo) या बाघी कहते हैं। स्त्रियों में भी इसी प्रकार जांघों में बद निकल आती हैं या गुदा द्वार पर पीप से भरे हुए पीड़ा दायक जख्म बन जाते हैं।

चिकित्सा—यह रोग वायरसों से उत्पन्न होता है जिस पर कोई दवा प्रभाव नहीं करती। अलबत्ता टैट्रासाइक्लीन ही कुछ लाभ पहुंचा सकती है। रोगी को जम कर इलाज करना चाहिए क्योंकि कभी-कभी रोग के ठीक होने में एक-डेढ़ वर्ष लग जाता है।

यह परीक्षा भी करना जरूरी है कि रोगी को इसी रोग के साथ-साथ सिफलिस का रोग तो नहीं है।

जब तक जांघों की गांठें ठीक न हों रोगी को मैथुन नहीं करना चाहिए।

नोट—रति रोगों तथा पुरुषों के सैक्स सम्बन्धी रोगों की चिकित्सा के लिए डा० कालीचरन गुप्ता की प्रसिद्ध पुस्तक **पुरुषों के रोग और उनकी आधुनिक चिकित्सा** (मूल्य 12 रुपये प्रकाशक मेडीकल प्रेस 720, बाबरपुर, शाहदरा, सड़क दिल्ली 32 का अध्ययन लाभकारी रह सकता है।

११. विभिन्न रोग

अरक्तता (एनीमिया)

जीवित रहने के लिए हमारे शरीर की असंख्य कोशिकाओं को भोजन तथा आक्सीजन तथा एक ऐसे साधन की जरूरत होती है जो उनके अन्दर उत्पन्न हुए व्यर्थ पदार्थों को फेंक सके। यह समस्त कार्य रक्त करता है। रक्त की लाल कोशिकाएं शरीर के समस्त ऊतकों की कोशिकाओं को आक्सीजन पहुंचाती हैं और उन कोशिकाओं में उत्पन्न व्यर्थ पदार्थ—कार्बन डाई आक्साइड—को फेफड़ों के मार्ग से बाहर निकाल देती हैं।

हमारी लाल रक्त कोशिकाओं के अन्दर लोहा धातु प्रोटीन के साथ मिली हुई रहती है। इस मिश्रण को हीमोग्लोबिन कहते हैं। यह हीमोग्लोबिन ही आक्सीजन को फेफड़ों से लेकर शरीर के समस्त अंगों में पहुंचाता है। इसी पदार्थ के कारण लाल कोशिकाओं का रंग लाल रहता है। हमारे 100 मिलीलीटर रक्त में 13 से 14 ग्राम तक हीमोग्लोबिन होता है। अगर किसी के रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा घटकर 11-12 ग्राम रह जाए तो कहा जाता है कि उसे अरक्तता (एनीमिया) हो गई है।

अरक्तता के कारण—अरक्तता या एनीमिया कई कारणों से उत्पन्न होता है और कारण के अनुसार उनकी चिकित्सा भी अलग-अलग है परन्तु हम यहां जिस एनीमिया पर विचार कर रहे हैं यह 'लोहे की कमी से उत्पन्न एनीमिया' कहलाता है। हमारे भारतवर्ष में इसी प्रकार के एनीमिया के रोगी ज्यादा मिलते हैं।

साबुत अनाज, हरी पत्ती वाली सब्जियों, फलों, मांस अंडे, जानवरों के लीवर, आदि में काफी मात्रा में लोहा होता है। सबसे ज्यादा लोहा पालक, मेथी,

सरसों का साग, चौराई का साग आदि हरे पत्ते वाली सब्जियों में होता है। अगर हमारे भोजन में ये चीजें काफी मात्रा में नहीं होतीं तो हीमोग्लोबिन को समुचित मात्रा में लोहा न मिलने के कारण यह पूरे शरीर में तेजी के साथ आक्सीजन नहीं ले जाने पाते जिससे शरीर की कोशिकाओं को पर्याप्त भोजन और ईंधन न मिलने के फलस्वरूप शरीर कमजोर होने लगता है, त्वचा का रंग पीला पड़ने लगता है।

जिन शिशुओं को माता के दूध के साथ अन्य भोजन तीन मास की आयु के पश्चात् भी न दिया जाए तो उसमें अरक्तता हो सकती है। मलेरिया तथा बवासीर रोग के कारण भी शरीर में रक्त की कमी हो जाती है। जिन स्त्रियों के जल्दी-जल्दी बच्चे होते रहते हैं प्रसव के समय उनका काफी रक्त निकल जाने के कारण उनके शरीर में लोहे की कमी पड़ सकती है। बच्चों के पेट में प्रायः कीड़े पड़ जाते हैं जिनके कारण बच्चों में अरक्तता हो जाती है।

भारतवर्ष में लगभग 50% गर्भवती स्त्रियों में एनीमिया पाया जाता है। अतः गर्भवती स्त्रियों को अपने रक्त की जांच करवाते रहना चाहिए ताकि अरक्तता न हो सके। कारण यह है कि एनीमिया ग्रस्त स्त्री का प्रसव के समय हार्टफेल हो सकता है और कई माताएं प्रसव के समय केवल इसीलिए मर जाती हैं कि उनके शरीर में रक्त की कमी थी। अरक्तता की रोगिणी स्त्री के बच्चा भी प्रायः कम वजन का पैदा होता है अथवा समय से पहले पैदा हो जाता है। अतः आजकल के चिकित्सक यह सिफारिश करते हैं कि गर्भवतियों को, भले ही उनमें अरक्तता न हो, दवा के रूप में प्रतिदिन लोहा लेते रहना चाहिए विशेषकर अन्तिम सवा तीन महीनों में।

अरक्तता के लक्षण—एनीमिया के रोगियों में कई लक्षण दिखाई पड़ते हैं। त्वचा पीली और चिकनी पड़ जाती है। अगर उसके होंठ बाहर की ओर को पलट कर देखें जाएं तो उनका अन्दर का भाग तथा जीभ पीली-सी दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त रोगी की आंखें पीली तथा निर्जीव दिखाई देती हैं। रोगी जल्दी थक जाता है, चक्कर आते हैं तथा भोजन के प्रति अरुचि हो जाती है। रोग बढ़ जाने पर आंखों की श्लेष्मीय झिल्ली (आंखों में नीचे की ओर पलक का भीतरी हिस्सा) का स्वाभाविक गुलाबी रंग हल्का पड़ जाता है। जब अरक्तता बहुत

अधिक हो जाती है तब उंगलियों के नाखून चम्मच की आकृति के हो जाते हैं और आसानी से टूट जाते हैं। इसको कोयलोनशिया कहते हैं।

औषधियां—दवा के रूप में लोहा देने के लिए सबसे सस्ती और महंगे-से-महंगे आयरन टानिक से भी अधिक प्रभावशाली औषधि फैरस सल्फेट टेब्लेट है जो केमिस्टों के यहां फरसोलेट (Fersolate) नाम से मिलती है। यह टेब्लेट 200 मिलीग्राम की होती है। यह एक-एक टेब्लेट, दिन में तीन बार, प्रत्येक बार खाना खाने के बाद इसका सेवन कराने से हीमोग्लोबिन की मात्रा में रोजाना 1-2 प्रतिशत की वृद्धि होने लगती है तथा कम-से-कम तीन महीने तक खाते रहने से शरीर में लोहे की कमी पूरी हो जाती है। लोहा सेवन करने के दिनों में टट्टी काले रंग की आती है यह स्मरण रखना चाहिए।

उपरोक्त रीति से पूरी मात्रा में लोहा खिलाने से शुरू के कुछ दिनों में पेट में गड़बड़ अथवा दस्त लग सकते हैं अतः प्रारम्भ में कुछ दिनों तक केवल एक टेब्लेट के तीन टुकड़े करके एक-एक टुकड़ा दिन में तीन बार दें और धीरे-धीरे बढ़ाते हुए उपरोक्त पूरी मात्रा में ले आएं। कई बार अरक्तता के कारण ही रोगी के पेट में गड़बड़ रहती है परन्तु कुछ दिनों जमकर लोहे का सेवन कराते रहने से यह गड़बड़ समाप्त हो जाती है।

परिवार के किसी भी सदस्य के शरीर में लोहे की कमी उत्पन्न न हो इसके लिए एक बड़ा अच्छा उपाय यह है कि दालें और सब्जियां हमेशा लोहे के बने बर्तनों में ही पकाई जाएं। पकते समय इनमें एक-दो टुकड़े अमचूर या इमली के डाल दिए जाएं अथवा एक छोटा-सा टिमाटर या नींबू के रस की कुछ बूंदें टपका दी जाएं तो इस खट्टे पदार्थ के कारण बर्तन के लोहे का कुछ अंश सब्जी में आ जाता है। यदि गृहणियां मेरी इस सलाह पर चलें तो परिवार के किसी भी सदस्य के शरीर में लोहे की या दूसरे शब्दों से खून की कमी नहीं रहेगी।

सिर का दर्द

सिर दर्द एक बहुत ही व्यापक शिकायत है जो अधिकतर सभ्य समाज में पाई जाती है। यद्यपि सिर दर्द कभी-कभी बहुत ही मामूली कारणों से भी पैदा हो जाता है परन्तु इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए क्योंकि हो सकता है कि

सिर दर्द किन स्थानों पर होता है :
1. इन स्थानों पर आधाशीशी तथा हाई ब्लड प्रेशर के कारण सिर दर्द होता है।
2. चिंता तथा तनाव के कारण होने वाले सिर दर्द का स्थान। 3. हिस्टीरिया के कारण होने वाले सिर दर्द में खोपड़ी के ऊपर बोझ रखा हुआ मालूम पड़ता है।
4. आंखों पर जोर पड़ने या आंखों के रोगों अथवा पुराने जुकाम में इस स्थान पर दर्द होता है।

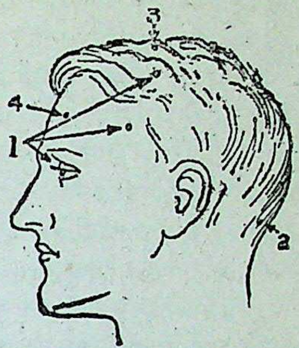

यह गम्भीर रोग की पूर्व चेतावनी हो। सिर दर्द मुख्यत: इन कारणों से होता है : (1) चिंता और मानसिक परेशानी : यह दर्द प्राय: सिर के पीछे के भाग में, गर्दन में होता है। (2) रूमाटिज्म। (3) ज्वर : कभी-कभी मलेरिया के आक्रमण के पूर्व सिर में तेज दर्द हो जाता है। (4) आंखों में कोई गड़बड़ी होने से या अधिक समय तक हल्के प्रकाश में अध्ययन करते रहने से भी सिर में दर्द हो जाता है। (5) नजले और जुकाम में विशेष कर जाड़ों के दिनों में सिर दर्द अधिक होता है। दर्द प्राय: सवेरे से दोपहर तक रहता है और संध्या होते-होते कम हो जाता है। यह दर्द अधिकतर माथे में रहता है। (6) रक्त संचार से सम्बन्धित रोगों मुख्यत: हाई ब्लड प्रेशर में भी सिर दर्द रहने लगता है। यह दर्द प्राय: दोपहर से कुछ पहले उस समय आरम्भ होता है जब रोगी काम-काज में अधिक व्यस्त होने लगता है। शाम होते-होते दर्द बहुत तेज हो जाता है। जिस स्थान पर ज्यादा व्यक्ति बैठे हों वहां की दूषित वायु से यह बढ़ जाता है। दर्द अधिकतर दोनों कनपटियों पर रहता है।

इनके अतिरिक्त कब्ज रहने या पेट में गैस बनने से भी सिर में दर्द रहने लगता है। एक पुरानी कहावत है 'आंत भारी तो माथा भारी' अर्थात् आंतों पर बोझ पड़ने से सिर दर्द होने लगता है।

चिकित्सा—सबसे पहले उस कारण को दूर करना चाहिए जिससे सिर दर्द उत्पन्न हो सकता है। स्वास्थ्य सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए। भोजन हल्का

और सुपाच्य होना चाहिए। प्रतिदिन हल्का-फुल्का व्यायाम करते रहने से सिर दर्द का आक्रमण कम होता है।

सिर दर्द के लिए सैकड़ों प्रकार की औषधियां बाजार में बिकती हैं परन्तु सबसे अच्छी और प्रभावशाली दवा एस्प्रिन ही है। बाजार में ऐस्प्रो, ऐनासिन आदि नामों से जो पेटेन्ट टेब्लेट्स बिकती हैं ये लगभग शुद्ध ऐस्प्रिन ही हैं। अतः सिर में दर्द होने पर इनमें से किसी दवा की एक या दो टिकिया पानी से खा लेना चाहिए। यह दवा खाली पेट नहीं खाई जाती। नाश्ता करने के बाद खानी चाहिए अथवा दूध के साथ खाना चाहिए। अगर खाना खाने के बाद खाई जाए तो पानी से ही लेना चाहिए। यही सबसे अच्छा घरेलू इलाज है। यदि ऐस्प्रिन के सेवन से पेट में जलन हो तो पैरासीटामोल टेब्लेट प्रयोग की जा सकती है।

आधासीसी

सभ्य लोगों में आधासीसी का दर्द (माइग्रेन) व्यापक रूप से फैली हुई बीमारी है। यह बहुत भीषण सिर दर्द है जिसका आक्रमण दौरे के रूप में होता रहता है। प्रातः सोकर उठने पर उसका आक्रमण होता है, रोगी का दिल मिचलाता है या उल्टी भी होने लगती है। प्रातः नींद खुलते ही रोगी को आभास होने लगता है कि आज दौरा पड़ेगा। इस रोग के शिकार अधिकतर तेज बुद्धि वाले और कार्य कुशल व्यक्ति होते हैं। रोग का आक्रमण प्रायः किशोर अवस्था में होता है और अधेड़ अवस्था तक बना रह सकता है। वृद्ध व्यक्ति साधारणतः इस रोग से मुक्त रहते हैं। अधिकतर लोगों में यह दर्द खानदानी होता है यानी पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता है।

यह दर्द सिर के आधे भाग में रहता है अतः इसे आधासीसी कहा जाता है। प्रारम्भ में तेज चुभता सिर दर्द कनपटी या आंख या माथे में एक छोटे से स्थान से आरम्भ होता है और फिर आस-पास के स्थानों में फैल जाता है। दौरे के पूर्व कुछ रोगियों को धुंधला दिखाई देने लगता है अथवा नजर के सामने चमकदार बिन्दु घूमते हुए दिखाई पड़ते हैं। कभी-कभी दौरे से पूर्व हाथ-पैरों में झनझनाहट-सी मालूम पड़ती है। दौरा पड़ने के बाद प्रायः एक अथवा कई उल्टियां होती हैं। उल्टी होने के बाद दर्द कुछ कम हो जाता है परन्तु रोगी में कमजोरी ज्यादा

आ जाती है। किसी-किसी रोगी को उल्टी नहीं होती केवल जी मिचलाता है। भूख रहते हुए भी भोजन करने की इच्छा नहीं होती और अंधेरे व शान्त कमरे में लेटने को मन करता है। जब दौरा समाप्त हो जाता है तो व्यक्ति दौरे के आक्रमण से पहले की अपेक्षा अधिक हल्कापन और स्फूर्ति अपने अन्दर महसूस करता है, यह इस रोग की एक विशेषता है। दौरा यकायक आरम्भ हो जाता है और कुछ मिनटों या घण्टों में समाप्त हो सकता है।

चिकित्सा—कब्ज से बचना चाहिए, हल्का और सुपाच्य भोजन करना चाहिए। यदि दर्द का आक्रमण हल्का ही हो तो दो टेब्लेट ऐस्प्रिन या पैरासीटामोल की पानी के साथ खाकर अंधेरी एकान्त कोठरी में लेट जाना चाहिए। रोगी को भावुकता से बचना चाहिए और मन में क्रोध न आए ऐसा प्रयत्न करना चाहिए। यदि धूप में चलने से दर्द बढ़ता हो तो गहरे रंग का चश्मा लगाकर निकलना चाहिए और ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि दोपहर के समय जब धूप बहुत तेज होती है उस समय बाहर न निकला जाए।

कुछ लोगों का अनुभव है कि दौरे के ससय यदि हलक में उंगली डालकर उल्टी (Vomiting) कर दें तो उन्हें बड़ा चैन मिल जाता है।

यदि उपरोक्त दर्द नाशक दवाओं से लाभ न हो तो इस रोग की केवल एक ही विशेष औषधि अरगट (Ergot) है जो आधासीसी की पेटेन्ट औषधियों में मिलाई जाती है। इन पेटेन्ट दवाओं में कैफरगौट (Cafergot) जो सैन्डोज कम्पनी बनाती है और माइग्रानिल (Migranil) जो इण्डो-जर्मन ऐल्कलायड्स कम्पनी बनाती है अधिक प्रसिद्ध हैं। जैसे ही अनुभव हो कि दौरा शुरू होने वाला है तो पहली खुराक में कैफरगौट की दो टेब्लेट पानी के साथ निगल लेना चाहिए। यदि इससे आधे घण्टे के अन्दर लाभ न हो अगली खुराक एक टेब्लेट पानी से निगल लें। अगर जरूरत हो तो इसी प्रकार आधे-आधे घण्टे बाद एक-एक टेब्लेट खाते रहें। परन्तु एक दिन में छः टेब्लेट से अधिक सेवन न करें। अगली बार के आक्रमण में चाहें तो पहली खुराक में ही तीन टेब्लेट सेवन कर लें ताकि आराम मिल जाए।

माइग्रानिल औषधि के सेवन करने की विधि यह है कि दौरे का आभास होते ही तुरन्त इसकी दो टेब्लेट जीभ के नीचे रखकर रस चूसते रहें और यदि

आवश्यकता हो तो आधे-आधे घण्टे बाद दो-दो टेब्लेट जीभ के नीचे रख कर रस चूसें। ये टेब्लेट भी एक दिन में छः से अधिक सेवन नहीं करनी चाहिए।

ये औषधियां आधासीसी के दर्द में ही काम करती हैं, अन्य प्रकार के सिर दर्द में इनसे लाभ नहीं होता। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि दर्द का दौरा आरम्भ होते ही तुरन्त औषधि सेवन कर लेना चाहिए। यदि कुछ देर बाद सेवन की जाएगी तो आमाशय की रक्तवाहिनियों में संकुचन हो जाने के कारण आमाशय इनका अवशोषण नहीं कर पाएगा अतः औषधि से लाभ नहीं होगा। इस दशा में इन्ट्रामस्कुलर इन्जेक्शन द्वारा अरगट या अन्य कोई पीड़ा हर औषधि सेवन कराने से ही लाभ हो सकेगा। अरगट युक्त औषधियां विषैली होती है अतः गर्भवती स्त्रियों को सेवन नहीं कराना चाहिए।

आधासीसी के रोगियों को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि औषधियां उन्हें दर्द के दौरे के समय राहत देती हैं। कोई भी औषधि ऐसी नहीं बनी है जो इस रोग को नष्ट कर सके।

सूखी खुजली

सूखी खुजली या खारिश का कारण 'स्कैबीज' नामक क्षुद्र कीट (Mite या किलनी) हैं जो केकड़े जैसी आकृति के सफेद रंग के होते हैं और बहुत ध्यान से देखने पर नंगी आंखों से भी दिखाई दे जाते हैं। ये कीट गर्दन के ऊपरी हिस्से जैसे चेहरे और सिर में भी आक्रमण नहीं करते, ये मुख्यतः जांघों में, गुदा के आस-पास नितम्बों के पीछे, सीने बगलों आदि में रहते हैं। हाथ-पैरों की उंगलियों के बीच के स्थान (घाइयां) इन कीटों से विशेष रूप से प्रभावित होती हैं।

ये कीट त्वचा के नीचे एक गुफा जैसी बना लेते हैं। इसके अन्दर घुसते हुए यह अण्डे देता जाता है और स्वयं दूसरे सिरे पर जाकर बैठ जाता है। इसके फल-स्वरूप एक उभार-सा बन जाता है और वहां खुजलाहट होती है। बार-बार खुजलाने से त्वचा फट जाती है और घाव बन जाते हैं। इस बीच में अण्डों में से नए जीव बाहर आने लगते हैं। गुफा में से बाहर आकर अपने रहने के लिए नए-नए स्थान खोजने लगने हैं। ये कीट दिन की अपेक्षा रात्रि में अधिक निकलते हैं

अत: रात्रि में खुजली भी ज्यादा होती है, कभी-कभी तो रात्रि में सोना भी मुश्किल हो जाता है।

यद्यपि ये सूक्ष्म जीव चलते तो बहुत धीरे-धीरे हैं परन्तु एक ही व्यक्ति से दूसरे में प्रवेश भी कर जाते हैं। एक ही बिस्तर में साथ-साथ सोने वाले व्यक्तियों में ऐसा ही होता है। इसलिए घर भर में जिनको खुजली हो उन सबकी चिकित्सा एक साथ होनी चाहिए नहीं तो ये कीट समाप्त नहीं होंगे तथा रोग फैलता रहेगा।

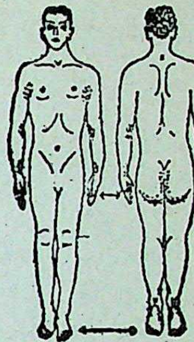

स्कैबीज के आक्रमण के प्रमुख स्थान (बिन्दुदार स्थान)

चिकित्सा—खुजली के उपचार के लिए आजकल बेन्जिल बेन्जोएट रसायन का ऐमल्शन प्रयोग किया जाता है जो 'ऐस्केबियोल' (Ascabiol) तथा अन्य व्यापारिक नामों से बाजार में मिलता है। रोगी को पहले गर्म पानी से साबुन लगाकर अच्छी तरह स्नान करना चाहिए इसके बाद यह दवा पूरे शरीर पर लगाकर सूखने देना चाहिए। यह जीवाणुओं को मार देती है। तीसरे दिन रोगी को साबुन लगाकर स्नान करना चाहिए और पहनने के कपड़े व ओढ़ने-बिछाने के कपडों को पानी में उबाल कर फिर प्रयोग करना चाहिए। आमतौर पर एक बार ही दवा लगाने से रोग चला जाता है। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर एक सप्ताह बाद दोबारा लगाई जा सकती है। अगर घर में कई सदस्यों को खुजली हो तो एक साथ ही सबका इलाज करना चाहिए।

अगर खुजाने के करण जगह-जगह फुंसियां-सी होकर पक गई हों तो उपरोक्त इलाज के बाद इन फुंसियों पर जेन्शियन वायलेट का 2% का घोल फुरेरी से लगा दीजिए। यह जामनी रंग का घोल होता है जो काफी सस्ता परन्तु अच्छा जीवाणुनाशक है।

घर के जिन सदस्यों को अभी खुजली नहीं शुरू हुई तो इन्हें 'टेटमोसोल' साबुन से रोजाना नहाना चाहिए। इससे रोग फैलने से रुक जाता है। यदि कई सप्ताह तक इस साबुन को लगाकर नहाया जाए तो हल्की खुजली केवल इसी साबुन से नष्ट हो जाती है।

प्राथमिक सहायता

हमारे दैनिक जीवन में कई बार अचानक दुखद घटनाएं घट जाती हैं। उदाहरण के लिए देहातों में फल तोड़ने के लिए बच्चे पेड़ पर चढ़ जाते हैं और पेड़ की डाल टूट जाने से वह नीचे गिर पड़ते हैं। इस प्रकार उनकी बांह या टांग टूट जाती है। कई बार असावधानी से काम करने से चाकू लग जाने से किसी अंग से तेजी से रक्त बहने लगता है। कई बार रसोई में खाना करते समय गृहणी अपने पीछे रखी हुई कोई वस्तु उठाने को जाती है और चलते हुए स्टोव या अंगीठी से उसकी साड़ी जल उठती है। अचानक हो जाने वाली ऐसी दुर्घटनाओं को आकस्मिक संकट (एमरजेन्सी) कहते हैं। प्राय: ऐसी घटनाएं घटते समय पास में डाक्टर उपलब्ध नहीं होते पर घायल या पीड़ित व्यक्ति को सहायता पहुंचाने के लिए तत्काल कुछ-न-कुछ करना जरूरी हो जाता है। इस प्रकार के तात्कालिक इलाज को प्राथमिक सहायता (फर्स्ट एड) कहते हैं।

चूंकि इस प्रकार की घटनाएं किसी भी परिवार में घट सकती हैं अत: प्रत्येक व्यक्ति को यह ज्ञान रखना बहुत जरूरी है कि इन दशाओं में हमें 'क्या' सहायता और 'किस' प्रकार देनी चाहिए और बिना देरी लगाए हुए तुरन्त यह सहायता देना शुरू कर देना चाहिए। सम्भव है कि यह सब जानने वाले व्यक्ति को अपने ज्ञान का प्रयोग करने का अवसर कभी न आए परन्तु समय आ पड़ने पर वह व्यक्ति अनेकों ऐसे लोगों के जीवन को बचाने में सहायक हो सकता है जो इस प्रकार की तात्कालिक सहायता के अभाव में नष्ट हो जाते हैं।

मुझे अच्छी तरह याद है कि एक लड़के को बिजली ने पकड़ लिया, उसे तुरंत बिजली से छुड़ा लिया गया परन्तु सदमे से बच्चा मूर्छित हो गया। उसके घर वाले उसे रिक्शा में डालकर कई प्राइवेट डाक्टरों के यहां चक्कर लगाते रहे परन्तु किसी ने उस केस को हाथ में नहीं लिया। जब वे अस्पताल पहुंचे तो बहुत देर हो चुकी

थी, नौजवान बच्चा बचाया न जा सका। होना यह चाहिए था कि बच्चे को तुरन्त कोई व्यक्ति कृत्रिम श्वास देना शुरू कर देता और रास्ते में भी कृत्रिम श्वास देते हुए उसे सीधे हस्पताल ले जाया जाता (बड़ा हस्पताल उसके घर से केवल डेढ़-दो मील दूर था)। ऐसा करने से बच्चे की जान बच जाती।

ऐसे आकस्मिक संकट कई प्रकार के हो सकते हैं। इस प्रकार के बहुत से अन्य संकटों के उपचार के सम्बन्ध में जानकारी रैडक्रास सोसायटी तथा सेंट जान ऐम्बुलेंस ऐसोसियेशन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों में बड़ी अच्छी तरह दी गई है। ये पुस्तकें हिन्दी भाषा में भी छपी हुई हैं और बड़े पुस्तक विक्रेताओं के यहां मिल जाती हैं।

जलना

हमारे घरों में आग तथा गर्म पानी या तेल से जलने की दुर्घटनाएं प्रायः होती ही रहती हैं। सबसे अधिक दुर्घटनाएं कपड़ों में आग लग कर जलने की होती हैं जिनका शिकार अधिकतर स्त्रियां ही होती हैं। बहुत बार ऐसा भी होता है कि गृह कलह से तंग आकर स्त्रियां अपने कपड़ों पर मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगाकर आत्म हत्या कर लेती हैं। अनेकों घरों में पति अथवा सास वधू के कपड़ों पर मिट्टी का तेल छिड़क कर उसे आग लगा देते हैं। इस दशा में ये लोग उसे हस्पताल भी नहीं ले जाते। कपड़ों में आग लगने का तीसरा कारण केवल दुर्घटना है। हमारे घरों में स्त्रियां भूमि पर अंगीठी, स्टोव या चूल्हा रखकर खाना बनाती हैं। प्रायः स्त्री किसी काम से उठती है और पीछे से साड़ी आग के सम्पर्क में आकर जल उठती है। स्त्रियों को चाहिए कि खड़े होकर खाना पकाने की आदत डाल लें ताकि अंगीठी या स्टोव भूमि से काफी ऊपर रहे और दुर्घटना होने की सम्भावनाएं कम-से-कम हो जाएं।

कपड़ों में आग लगने पर क्या करें ?

अगर किसी के कपड़ों में आग लग जाए तो कभी भी भागना नहीं चाहिए। इससे आग और भी भड़क उठती है तथा चेहरा और बाल भी जल सकते हैं। आग लगते ही जमीन पर लुढ़कना चाहिए तथा घर वालों को उसके शरीर पर

अच्छी तरह पानी डालते हुए आग बुझाना चाहिए। पानी डाल देने से आग तो बुझ ही जाती है साथ ही शरीर के अन्दर के भाग आग की गर्मी के कारण झुलस जाने से बच जाते हैं। आज से कुछ वर्ष पहले तक चिकित्सकों का यह मत था कि रोगी पर लिहाफ या कम्बल डालकर आग बुझाना चाहिए। ऐसा करने से आग तो बुझ जाती है परन्तु शरीर के अन्दर तक के अंग गर्मी से भुन जाते हैं। अतः आधुनिक चिकित्सक जले हुए पर पानी डालने की सिफारिश करते हैं।

आग के जलने पर उस अंग में तेज जलन होती है, छाला पड़ जाता है और कई-कई दिनों में घाव ठीक होता है और प्रायः वहां सफेद दाग-सा पड़ जाता है। जलने की साधारण और गम्भीर स्थिति के अनुसार इसे कई श्रेणियों में बांटा जाता है। जब जलने से केवल त्वचा लाल हो जाती है तो यह साधारण जलना हुआ। इसमें जलन 1-2 घण्टे में स्वतः ही शान्त हो जाती है। यदि जलने से फफोला पड़ जाए तो दूसरी श्रेणी का जलना गिना जाएगा। जब जलने से त्वचा पूरे तौर से जलकर घाव बन जाता है तो गम्भीर किस्म का जलना समझा जाता है। इस गम्भीर जलने की दशा में दिल बैठने की आशंका रहती है। सिर, छाती और गर्दन पर जलना ज्यादा खतरनाक होता है। बच्चों और बूढ़ों में यह प्राण लेवा भी हो जाता है। अतः गम्भीर रूप से जलने पर हृदय की स्थिति संभालना जरूरी होता है। इसमें तुरन्त हस्पताल आदि की सहायता लेनी चाहिए।

पहला काम—हाथ, पैर या अन्य अंगों में साधारण जलने पर तुरन्त वह अंग शीतल जल में डुबो कर रखना चाहिए। अगर मिल सके तो इस पानी में बर्फ डालकर खूब ठण्डा कर लेना चाहिए। इससे जलन एकदम शान्त हो जाती है। पानी में वह अंग काफी देर डुबाए रखें। निकालने पर जलन फिर भी मालूम हो तो पुनः शीतल जल में उसे डुबो दें। कभी-कभी जले हुए अंग को आठ-दस घण्टे तक पानी में रखना आवश्यक होता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि संसार भर के डाक्टर इस बात पर सहमत हैं कि जले हुए अंग को पानी में रखने से अच्छा और कोई इलाज नहीं है। पानी में डुबो कर रखने के अलावा और किसी इलाज की जरूरत नहीं है। यदि दर्द ज्यादा हो तो इसे कम करने के लिए एक या दो टेब्लेट 'ऐस्प्रो', 'कोडोपायरीन' या 'एनासिन' की खिला दें।

यदि जलने के स्थान पर फफोला पड़ गया है (दूसरी श्रेणी का जलना) तो उसे फोड़ना नहीं चाहिए। यदि वहां कपड़ा चिपक गया है तो उसे भी नहीं

छुड़ाएं, वह बाद में अपने आप छूट जाएगा। फफोले यदि फूट जाएं तो उबाल कर ठण्डे किये हुए पानी और साबुन से इन्हें धोकर साफ कर दें। इसके बाद इन पर जेन्शियन वायलेट (जामनी रंग) का हल्का घोल लगा दें। यह जीवाणुओं को बढ़ने से रोकने के लिए सबसे सस्ती दवा है। यदि आप चाहें तो जले स्थान पर 'बरनोल' मरहम या आगे लिखा अलसी के तेल का मरहम लगा सकते हैं। जले स्थानों को जहां तक सम्भव हो खुला रहने दें परन्तु यदि मक्खियां व धूल वाला स्थान हो तो इस पर उबाल कर सुखाया हुआ कपड़ा ढीला-सा बांध दें।

यदि ऊपर की त्वचा जलकर नीचे का मांस दीखने लगे (तीसरी श्रेणी का जलना) तो ऐसा जलना हमेशा खतरनाक होता है विशेषकर जबकि अधिक स्थान जल गया हो। ऐसे रोगियों को तुरन्त हस्पताल ले जाना चाहिए।

यदि तुरन्त डाक्टरी सहायता न मिले तो ऊपर लिखी विधि से जलने का उपचार करें और जले स्थान को हवा लगने दें। मक्खियों व धूल से बचाने के लिए इस पर साफ कपड़ा ढक दें। जब भी कपड़ा जख्म से मवाद या रक्त आने के कारण गन्दा हो जाये इसे बदलते रहें। पीड़ा कम करने के लिए ऊपर बताई गई पीड़ाहर टेब्लेट देना चाहिए।

अलसी के तेल का मरहम—अलसी का तेल 100 ग्राम, राल सफेद 30 ग्राम लेकर कढ़ाई में डालकर पकावें। मिल जाने पर उतार कर छान लें। ठण्डा होने पर इसे कांसे की थाली में डालकर 21 बार चूने का पानी मिला-मिला कर फेंटें और वह पानी निकालते जाएं। इससे मरहम सफेद बन जाएगा। चूने का पानी बनाने की विधि नीचे दी है:

कलई वाला चूना 10 ग्राम लेकर एक बर्तन में रख, एक ऊपर से पौन लीटर जल डालकर लकड़ी से चलावें व एक बर्तन में रख दें। एक-दो घण्टे बाद चूना नीचे बैठा मिलेगा और ऊपर निथरा हुआ पानी। बस यह पानी सावधानी से अलग निकाल कर मरहम धोने के काम में लावें।

इस मरहम को आग से जले हुए स्थान पर लगाते ही जलन तत्काल शान्त हो जाती है, छाला नहीं पड़ता और घाव भी शीघ्र ही भर जाता है। विशेषता यह हैं कि इस मरहम से ठीक होने पर जलने की जगह दाग भी नहीं पड़ता है।

होम्योपैथी की चमत्कारी दवा—कैन्थरिस मदर टिंक्चर की कुछ बूंदें एक या दो चाय के चम्मच या पानी या तेल में मिलाकर जले हुए स्थान पर लगा देने से

जलन शान्त होती है, वहां छाला और दाग नहीं पड़ने पाता और शीघ्र ही घाव भर जाता है। यदि जले स्थान पर जलन तेज हो तो कैन्थरिस 30 X की चार-चार गोलियां 3-3 या 2-2 घण्टे बाद मुंह से सेवन कराएं।

लू लगना

यदि कोई व्यक्ति अधिक समय तक धूप में रहता है तो सूर्य की गर्म तेज किरणें सिर पर पड़ते रहने से मस्तिष्क के अन्दर का भाग ज्यादा गर्म हो जाता है जिसके कारण यह रोग होता है।

रोगी का चेहरा तथा आंखें लाल हो जाती हैं, बार-बार पेशाब आता है, प्यास बहुत ज्यादा लगती है, सिर में तेज दर्द होता है और चक्कर आने लगते हैं। इसके पश्चात् खतरे की अवस्था उत्पन्न होती है जिसमें शरीर के तापमान में अकस्मात वृद्धि होने लगती है और ताप 104 से 108 फ० तक पहुंच जाता है। रोगी मूर्छित हो जाता है। मस्तिष्क के अन्दर स्थित ताप नियंत्रक केन्द्र जो मानव शरीर के अन्दर ताप को सन्तुलित रखता है, यह केन्द्र काम करना बन्द कर देता है जिससे पसीना आना बन्द हो जाता है और रोगी के शरीर का रंग नीला होने लगता है। इस समय हार्टफेल हो जाने के कारण रोगी की मृत्यु हो सकती है।

बचाव—गर्मी के दिनों में धूप, तेज गर्म हवा आदि में बाहर जाना हो तो सिर व गर्दन पर गीला तौलिया डालकर या छतरी लगाकर चलना चाहिए। दिन में कई बार नमक मिला हुआ पानी काफी मात्रा में पीते रहना चाहिए। कोशिश यह होनी चाहिए कि सुबह शाम ठण्डक में ही बाहर के सारे काम निपटा लिए जाएं।

चिकित्सा—रोगी के शरीर का तापमान तुरन्त घटाना आवश्यक है इसके लिए लू के रोगी को तुरन्त शीतल छाया में लिटाकर उसके कपड़े उतार दें। खुली शीतल हवा जरूरी है। सिर पर ठण्डे पानी या मिल जाए तो बर्फ के पानी की पट्टी रखें। हर दस मिनट बाद उसका टेम्प्रेचर थर्मामीटर से नापते रहें। रोगी के शरीर पर बराबर पानी धार बांधकर डालते रहें और पंखे से बराबर उसको हवा करते रहें। यदि सम्भव हो सके तो बर्फ के पानी का एनीमा दें। जब रोगी का तापक्रम घटकर 101 डिग्री पर आ जाए तो शरीर पर पानी डालना बन्द कर दें। चूंकि शरीर में जल तथा नमक की कमी हो जाती है अतः रोगी को थोड़ा-

थोड़ा करके पर्याप्त जल पिलावें जिसमें थोड़ा-सा नमक जरूर मिला लिया जाए। यदि रोगी बेहोश हो गया हो तो मुंह में पानी न डालें।

यदि ऐसा प्रतीत हो कि रोगी की नब्ज बैठती जा रही है तो तुरन्त ही कृत्रिम श्वास (Artificial respiration) देना आरम्भ कर देना चाहिए ताकि रोगी को मरने से बचाया जा सके। रोगी के चेहरे व सीने पर बरावर जल के छींटे देते रहना चाहिए।

यदि कोई सरकारी हस्पताल पास में हो तो तुरन्त वहां ले जाना चाहिए ताकि वहां उचित चिकित्सा हो सके। परन्तु जब तक हस्पताल में पहुचें रोगी को रास्ते में वरावर कृत्रिम श्वास देते रहें।

त्वचा का कटना, छिलना व छोटे जख्म

शरीर में कहीं पर जख्म हो जाये तो इसका उपचार बड़ी सावधानी से करना चाहिए और प्रत्येक कदम पर सफाई का ध्यान रखना चाहिए ताकि इसमें पीप न पड़ने पाये और घाव जल्दी भर जाए।

कटी हुई त्वचा को छूने से पहले अपने हाथ साबुन लगाकर धो लीजिए। अगर जख्म से रक्त निकल रहा हो तो रक्त रोकने के लिए स्वच्छ उंगली से कटे स्थान को कुछ समय तक दबाए रखना चाहिए या कटे स्थान पर रक्त लाने वाली धमनी को दबाए रखना चाहिए। इतने ही से साधारणतः रक्त का बहना रुक जाएगा। कसकर पट्टी बांधने से भी रक्त रुक सकेगा। उबालकर ठण्डा किए हुए पानी और साबुन से जख्म को खूब अच्छी तरह धोकर साफ कर दीजिए। यह देख लीजिए की जख्म में कूड़े या मिट्टी के कण न रह जाएं। अगर सम्भव हो तो फटी हुई त्वचा को जरा-सा पलट कर इसे भी साफ पानी से धो दीजिए। अगर इसमें गन्दगी के कण मौजूद हो तो उन्हें चिमटी से पकड़ कर निकाल दें। परन्तु चिमटी को पहले 15-20 मिनट तक उबाल लेना चाहिए ताकि इस पर उपस्थित जीवाणु मर जाएं।

अगर सम्भव हो तो उबाल कर ठण्डा पानी किसी प्लास्टिक की पिचकारी में (जिनसे बच्चे होली पर रंग खेलते हैं) भरकर इस पानी की धार तेजी के साथ जख्म पर मार कर जख्म को साफ कर लीजिए, यह सावधानी इसलिए जरूरी है कि यदि धूल-मिट्टी का कण जख्म में रह गया हो तो जख्म में पीप पड़ जाएगी।

साधारण त्वचा कटने पर जख्म के ऊपर टिंक्चर आयोडीन या अल्कोहल (स्प्रिट) लगाने की जरूरत नहीं है क्योंकि ऐसा करने से उस स्थान का मांस क्षति ग्रस्त हो जाता है और जख्म देर से भरता है। पानी और साबुन से धोकर साफ किया हुआ और बिना दवा लगाया हुआ जख्म जल्दी भरता है।

यदि जख्म किसी गन्दे औजार से हुआ है तो तुरन्त टेटनस टाक्साइड का इन्जेक्शन डाक्टर से लगवा लें।

जख्म जो आगे चल कर गम्भीर रूप ले सकते हैं

नीचे लिखे प्रकार के और परिस्थितियों में हुए जख्म आगे चल कर गम्भीर रूप से संक्रमित हो सकते हैं—

- ☐ जंग या कूड़ा-करकट लगे हुए हंसिए, खुरपे या फावड़े आदि से बना हुआ जख्म। इन जख्मों में प्रायः गन्दगी चली जाती है।
- ☐ कील या अन्य नोकीले औजार घुसने से हुए जख्म जिनमें से रक्त बहुत कम निकलता है।
- ☐ जिन स्थानों पर पशु रखे जाते हैं जैसे कि गौशाला आदि स्थानों पर हुए जख्म।
- ☐ बड़े जख्म जिनमें त्वचा कुचली जाए।
- ☐ बन्दर, बिल्ली, कुत्ता या मनुष्य के काटने से बने जख्म।
- ☐ बन्दूक, पिस्तौल की गोली का जख्म।

इस प्रकार के 'सम्भावित खतरनाक' जख्मों का उपचार

(1) जख्म को ऊपर बताई रीति से साबुन और पानी से धोइये। सम्भव हो तो पिचकारी से पानी की धार प्रैशर से डालकर जख्म को धोकर साफ करें। इसमें कूड़ा या मिट्टी के कण बचे न रह जाएं।

(2) एक बाल्टी पानी में एक चाय का चम्मच पोटाश परमेंगनेट (लाल दवा) डालकर जख्म को इसमें डुबो कर रखें। इसके बाद जख्म पर जेन्शियन वायलेट घोल फुरैरी से लगाकर जख्म पर ढीली-सी पट्टी बांध दें।

(3) यदि जख्म बहुत गहरा है, या जानवर का काटा है या इस बात की सम्भावना है कि जख्म के अन्दर धूल-मिट्टी रह गई है तो रोगी को किसी एन्टी-

बायोटिक औषधि का सेवन कराया जाए। इसके लिए ऐम्पीसिलिन (Ampicillin) के कैप्सूल अथवा इन्जेक्शन सर्वश्रेष्ठ रहते हैं। जवान आदमी को दिन और रात में हर छः-छः घण्टे बाद 250 मिलीग्राम वाले दो-दो कैपसूल सेवन कराएं। यदि जख्म गहरा हो तो एक सप्ताह तक इसका सेवन कराना चाहिए।

(4) इस प्रकार के जख्मों को टांके लगाकर या स्टिकिंग प्लास्टर द्वारा बन्द न करें बल्कि खुले रहने दें।

यदि उस व्यक्ति को टेटनस से बचाव के टीके पहले नहीं लगे हैं तो उसे टेटनस होने का गम्भीर खतरा है अतः ऐसे व्यक्तियों को तुरन्त ही ऐम्पीसिलिन या पेनिलिनि सेवन करना चाहिए भले ही जख्म मामूली-सा हो। मात्रा ऊपर लिखी जा चुकी है।

(5) डाक्टर की सलाह लेनी चाहिए। शायद डाक्टर टेटनस एन्टीटाक्सिन का इन्जेक्शन लगाना जरूरी समझे।

रक्त स्राव

कई बार चोट-फेंट लग जाने से शरीर में कहीं से रक्त निकलने लगता है। चूंकि रक्त ही मनुष्य का जीवन है अतः इस रक्त को बहने से तुरन्त रोकना जरूरी हो जाता है। इससे पहले कि हम रक्त स्राव को रोकने की विधि बताएं हम शरीर में रक्त संचार के विषय में कुछ बता देना उचित समझते हैं।

हृदय रक्त को संचालित करने में पम्प या पिचककरी का काम करता है। हृदय की बांई ओर से रक्त सर्वत्र जाता है। यह धमनियों (Arteries) में से होकर जाता है।

हृदय बहुत मजबूत पम्प का काम करता है और आस-पास की धमनियों में रक्त का दबाव लगभग एक किलो प्रति वर्ग इन्च होता है। इसलिए धमनियां बहुत मजबूत रहती हैं।

अन्त में रक्त धमनियों से निकल कर नन्हीं-नन्हीं नलिकाओं में घुसता है। इन नलिकाओं को केशिका (Capillaries) कहते हैं। केशिकाओं की दीवार बड़ी पतली होतीं है; इसलिए रक्त में आक्सीजन और खाद्य पदार्थ तन्तुओं तक पहुंच सकता है और तन्तुओं से रद्दी माल खून में आ सकता है। इन केशिकाओं में से होकर रक्त शिराओं (Veins) में जाता और इनमें चलकर रक्त फिर

हृदय में वापस आ जाता है। केशिकाओं में रक्त का चाप बहुत कम हो जाता है और शिराओं में पहुंचने पर तो चाप और भी कम हो जाता है। इसलिए शिराओं की दीवारें धमनियों की दीवारों से पतली और कमजोर रहती हैं।

प्रत्येक प्रधान धमनी की बगल में एक शिरा भी रहती है, परन्तु इन शिराओं के अतिरिक्त अन्य छोटी शिराओं का एक जाल भी फैला रहता है। ये शिराएं ठीक त्वचा के नीचे हो रहती हैं और इसलिए वे आंख से दिखलाई भी पड़ती हैं।

तीन प्रकार के रक्त स्राव—रक्त स्राव भी तीन प्रकार का होता है, धमनी से, शिरा से और केशिकाओं से। जब धमनी से रक्त निकलता है तो जोर से छरक-छरक कर बाहर निकलता है और चटक लाल रंग का रहता है। शिरा से निकलने पर रक्त अटूट धारा में और शान्ति से निकलता है और उसके रंग में कालापन रहता है। धमनी और शिरा से जब रक्त निकलता है तो उद्गम स्थान की जांच करने पर पता चलता है कि रक्त किस बिन्दु से निकल रहा है परन्तु केशिकाओं से रक्त निकलने पर कटी सतह से रक्त चुचाता या रिसता हुआ दिखलाई पड़ता है।

उपचार—जब रक्त किसी शिरा से या केशिकाओं से निकलता हो अथवा थोड़ी मात्रा में निकल रहा हो तो कटे स्थान पर कपड़े की गद्दी रखकर उस पर पट्टी बांध देना काफी होता है, या अंगूठे से कुछ समय तक स्थान को दबाए रखने से काम चल जाता है। परन्तु यदि कोई धमनी कट जाने के कारण रक्त तेजी से निकल रहा है तो धमनी पर ही अंगूठे व उंगलियों दोनों से दबाव डालना चाहिए। धमनी पर यह दबाव ऐसे स्थान पर डालना चाहिए जो हृदय तथा जख्म के बीच में हो। प्राथमिक चिकित्सा के कोर्स में विद्यार्थियों को शरीर पर कुछ ऐसे विशेष स्थान बताए जाते हैं जिन्हें प्रेशर पाइंट (Pressure point) या दबाव बिन्दु कहते हैं। यहां पर धमनी हड्डी के ऊपर उससे मिलती हुई जाती है। यहां पर धमनी को दबाने से धमनी से रक्त बहना रुक जाता है। ये स्थान पृष्ठ 153 के चित्र में दिखाए गए हैं।

यदि हाथ या पैर में घाव हो तो नागफांस या टूर्निकेट (Tourniquet) बांध कर रक्तस्राव आसानी से रोका जा सकता है। इसके लिए रूमाल या अन्य वस्त्र एक-दो बार लपेट कर बांधने के बाद गांठ में छड़ी या कोई लकड़ी छोड़ कर इतना पेरना चाहिए कि बन्धन खूब कस उठे। स्मरण रहे कि नागफांस अधिक-से-

अधिक आधे घण्टे तक बंधा रहे। अधिक समय तक बांधने से पीड़ा के अतिरिक्त यह डर रहता है कि रक्त-संचार के पूर्णतया रुक जाने के कारण बन्धन के नीचे का अंग न मर जाए (अर्थात् उसमें गैन्ग्रीन Gangrene) न हो जाए। यदि ऐसा हो जाएगा तो फिर उस अंग को काट ही डालना पड़ेगा। यदि नागफांस का प्रयोग किया जाए तो कटे स्थान पर कस कर पट्टी भी बांधनी चाहिए, 15 मिनट में नाग फांस को ढीला करके देखना चाहिए कि रक्त स्राव रुका या नहीं। आवश्यकता हो तो 15 मिनट तक इसे और रहने देना चाहिए। घाव पर पट्टी अधिक समय तक बंधी रहे तो हर्ज न होगा। उसे बंधी रहने देनी चाहिए। आधा घण्टा वीत जाने के बाद रक्त स्राव बहुत जोर का नहीं हो सकता।

कैरोटिड प्रेशर पाइंट—गले में चाकू छुरे द्वारा होने वाले घाव अथवा चोट लगने से सिर, चेहरे या गर्दन से रक्त स्राव हो रहा हो तो इसे रोकने के लिए कैरोटिड धमनी को दबाना चाहिए। हमारी गर्दन से सिर तक के समस्त भागों में रक्त लेकर जाने वाली यही बड़ी धमनी है। यह गर्दन में दोनों ओर श्वास नली तथा

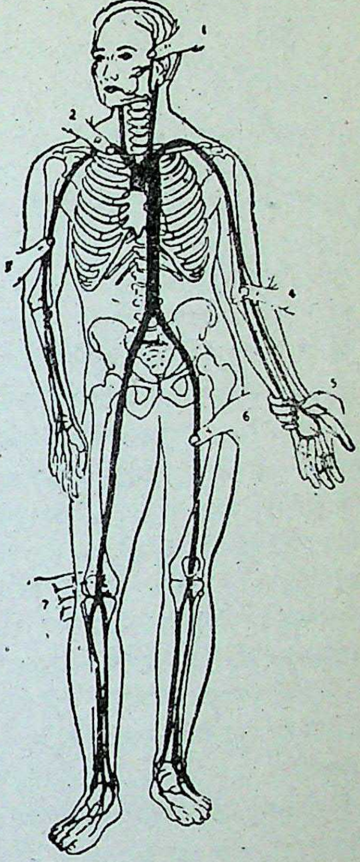

महत्त्वपूर्ण दबाव बिन्दु। इन स्थानों को हाथ या अंगूठे से दबाकर बहते हुए रक्त को रोका जा सकता है।

कैरोटिड दबाव बिन्दु

गले पर छुरे-चाकू से घाव हो जाने पर चित्र में दिखाए स्थान पर कैरोटिड धमनी को अंगूठे से दबाकर रक्त-स्राव रोका जा सकता है।

गर्दन की करवट में ऊपर से नीचे आने वाली मांसपेशी के बीच में होती है। अपनी चारों उंगलियां गर्दन के पीछे रख कर अंगूठे से इस धमनी को पीछे की तरफ दबाना चाहिए जैसा कि चित्र में दिखाया है। इस बात की सावधानी रखें कि अंगूठे से उस व्यक्ति की श्वास नली न दब जाए।

यह तो सब रक्त स्राव के रोकने का उपचार है। इसके अतिरिक्त आहत व्यक्ति का साधारण उपचार भी कराना चाहिए। उसके शरीर से बहुत-सा तरल पदार्थ निकल जाता है इसलिए उसे ग्लूकोज या चीनी मिलाकर कुनकुना दूध या चाय पीने को देना चाहिए। जिस चारपाई पर आहत व्यक्ति को लिटाया गया हो उसका पैताना सिरहाने की अपेक्षा तीन-चार इंच ऊंचा रखा जाए तो अच्छा है। जब तक रक्त स्राव बन्द न हो जाए तब तक ब्रांडी या अन्य उत्तेजक पदार्थ नहीं देना चाहिए। जब रक्त स्राव बन्द हो जाए तब भी आहत अंग को हिलाना नहीं चाहिए। पट्टी खोलकर यह देखने की अक्सर प्रबल इच्छा होती है कि रक्त स्राव रुका या नहीं, या यह इच्छा होती है कि खून से तर पट्टी खोलकर दूसरी बांधी जाए, परन्तु इन दोनों इच्छाओं को रोके रहना चाहिए। पट्टी खोलने से हानि होगी। पट्टी बंधी रहने पर ही प्रकृति को क्षतिपूर्ति का अवसर मिलेगा।

पानी में डूबना

पानी में डूबने के विभिन्न परिणाम हो सकते हैं। ऐसा सम्भव है कि डर या मूर्च्छा के कारण मृत्यु हो जाए। फिर, बहुत ऊंचाई से गिरने पर पानी की चोट से या पानी के नीचे छिपी किसी चट्टान से टक्कर खाकर सिर फट सकता है, या

बेहोशी हो सकती है। यदि कोई व्यक्ति पानी पर गिरते ही डूब जाए और एक बार भी न उतराये तो समझना चाहिए कि सम्भवतः वह किसी प्रकार बेहोश हो गया है या सेवार (घास), कीचड़ आदि में फंस गया है।

कृत्रिम श्वास की रीति आगे बतलाई जा रही है। पन्द्रह मिनट पानी में डूबे रह कर निकाले व्यक्ति भी कृत्रिम श्वास की रीति से जीवित कर दिये गए हैं। इसलिए पूर्ण मृत जान पड़ने वालों को भी कृत्रिम श्वास देकर बचाने की चेष्टा करनी चाहिए, विशेषकर यदि वह व्यक्ति पानी के अन्दर बीस-पचीस मिनट से अधिक डूबा न रहा हो। जब कृत्रिम श्वास की रीति के उपयोग से श्वास चलने लगे तो रोगी की सेंक और मालिश करनी चाहिए जिससे रक्त-संचार बढ़े।

कृत्रिम श्वास द्वारा पुनरुज्जीवित करना

अगर किसी दुर्घटना के कारण कोई व्यक्ति बेहोश हो जाए और उसकी सांस का चलना बन्द हो जाए तो यह नहीं समझ लेना चाहिए कि वह मर गया है परन्तु उसका जीवन संकट में जरूर पड़ जाता है। हमारा जीवन वायु में मिली हुई आक्सीजन पर निर्भर रहता है जो हम सांस के साथ फेफड़ों में खींचते हैं जहां से यह रक्त में मिलकर शरीर की प्रत्येक कोशिका (Cell) में पहुंचती है। चूंकि शरीर की कोशिकाएं आक्सीजन अपने अन्दर एकत्रित करके नहीं रख सकतीं और हमारे रक्त में भी बहुत थोड़ी-सी मात्रा में आक्सीजन जमा रहती है जो दो-चार मिनट तक ही काम दे सकती है अतः यदि सांस 5 मिनट से अधिक देर तक बन्द रहे तो व्यक्ति की मृत्यु [illegible]वत है।

प्रायः ऐसा होता है कि दुर्घटना के कारण व्यक्ति का सांस लेना बन्द कर देने के बाद भी थोड़ी देर तक हृदय बराबर अपना काम करता है जिससे शरीर की कोशिकाओं को रक्त पहुंचता रहता है। चूंकि रक्त में कुछ देर तक थोड़ी-सी आक्सीजन मौजूद रहेगी अतः शरीर की कोशिकाएं तुरन्त ही नहीं मरेंगी। अतः यदि हृदय की गति रुकने से पहले ही कृत्रिम रीति से सांस चलना आरम्भ करा दिया जाए तो प्रायः हृदय की गति बनी ही रह जाती है और सांस भी अपने आप चलने लगती है और व्यक्ति मरने से बच जाता है। अतः गृहस्थ व्यक्तियों को कृत्रिम रीति से सांस चालू कराने का तरीका सीख लेना चाहिए। शायद अपने इस ज्ञान के कारण वे कभी किसी की जान बचा सकें।

सांस बन्द हो जाने के कारण—सांस बन्द हो जाने का एक प्रमुख कारण है बिजली का झटका या शॉक लगना। जाड़ों में अक्सर कमरे को गर्म रखने के लिए स्त्रियां पत्थर के कोयले की अंगीठी सुलगा कर दरवाजे बन्द करके सो जाती हैं। कोयले से कार्बन-डाई-आक्साइड गैस निकल कर कमरे में भर जाती है और आक्सीजन कम हो जाती है अतः आक्सीजन न मिलने से आदमी मर जाता है। इसे दम घुटना कहा जाता है। मिट्टी या रेत में दब जाने से भी व्यक्ति सांस नहीं ले पाने के कारण मर जाता है। पानी में डूबने से, ज्यादा मदिरा पीने से, पेनिसिलिन आदि के इन्जेक्शन लगाने से तथा अन्य कारणों से भी सांस बन्द हो जाती है।

जब दुर्घटना में किसी की सांस चलना बन्द हो जाए तो यह नहीं सोचना चाहिए कि किसी अन्य सुविधाजनक स्थान पर रोगी को ले जाकर वहां कृत्रिम सांस दिया जाना ही ठीक रहेगा। इतने समय में रोगी प्राण त्याग सकता है। अतः जहां रोगी पड़ा है उसी स्थान पर तुरन्त एक क्षण नष्ट किए बिना कृत्रिम सांस देना आरम्भ कर देना चाहिए। परन्तु यदि सम्भव हो तो रोगी को बजाए चारपाई या पलंग पर लिटाने के भूमि पर लिटा दिया जाए। ऐसा करने से कृत्रिम श्वास देने में सुविधा रहती है। **स्मरण रखिए यदि कोई व्यक्ति बेहोश हो गया है तो उसका अर्थ यह नहीं है कि उसकी सांस चलना बन्द हो गई है। यदि बेहोश व्यक्ति की प्राकृतिक रूप से सांस चल रही है तो उसे कृत्रिम सांस मत दीजिए।** यदि यह जानना चाहते हैं कि सांस चल रही है या नहीं तो उसकी करवटों में सबसे नीचे की पसलियों पर अपने हाथ रखिए। यदि वह सांस ले रहा है तो उसकी पसलियां ऊपर-नीचे होती रहती हैं जिससे सांस चलने का पता लग जाएगा।

कई बार बिजली के झटके से मनुष्य बेहोश होकर उसका सारा शरीर ऐंठ जाता है, नब्ज इतनी कमजोर हो जाती है कि पता नहीं लगता, ऐसा मालूम पड़ता है कि व्यक्ति मर गया है। ऐसे समय यदि कोई बहुत अनुभवी व्यक्ति या डाक्टर जब तक निश्चित रूप से घोषणा न कर दे कि वह मर गया है तब तक कृत्रिम रीति से सांस देते रहना चाहिए। कई बार 4-5 घण्टे तक कृत्रिम श्वास देते रहना जरूरी होता है। कई लोग आठ-आठ घण्टे तक कृत्रिम श्वास देने के बाद बचाए जा चुके हैं।

कृत्रिम श्वास देने का सिद्धान्त

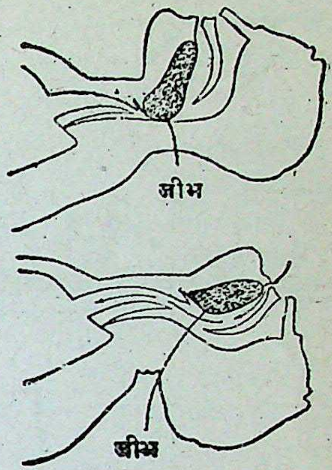

कृत्रिम श्वास देने की कई विधियां फर्स्ट एड कोर्स में सिखाई जाती हैं। यहां हम जो विधि दे रहे हैं यह सबसे सरल है और फर्स्ट एड न जानने वाला भी इसे प्रयोग कर सकता है। इस विधि में उपचार करने वाला अपने मुंह में हवा भर कर बेहोश व्यक्ति के मुंह में या नाक में पहुंचाता है ताकि उसके फेफडों को फुलाया जा सके।

जिस समय कोई व्यक्ति बेहोश हो जाता है तो उसकी जीभ पीछे को लटक जाती है और उसकी श्वास नली को बन्द कर देती है इस स्थिति में उसके मुंह या नाक में हवा पहुंचाने से हवा फेफड़ों में नहीं पहुंच सकेगी। (चित्र 1—ऊपर)

अचेत व्यक्ति की गर्दन को खींच कर उसके सिर को पीछे कर दिया जाता है और उसकी ठोड़ी को ऊपर को उठा दिया जाता है। ऐसा करने से उसकी जीभ ऊपर उठ आती है और सांस के आने-जाने का मार्ग साफ हो जाता है। (चित्र 1—नीचे)

कृत्रिम सांस देने की विधि

(1) बेहोश व्यक्ति को पीठ के बल लिटाकर उसकी ठोड़ी ऊपर उठाकर सिर पीछे को कर दीजिए ताकि उसकी जीभ ऊपर आ जाए और श्वास मार्ग साफ हो जाए। (चित्र 2)

(2) अपना मुंह पूरा खोलकर दुर्घटना-ग्रस्त व्यक्ति के मुंह पर जमा कर रखिए। इसी समय उसकी नाक को उंगलियों से दबा कर बन्द कर दें। अब गहरा सांस लेकर उसके मुंह में हवा भरिए। (चित्र 3)

(3) हवा भरते समय देखते रहिए उसका सीना फूलेगा। अब अपना मुंह हटा कर उसके मुंह से निकलती हुई सांस की आवाज सुनिए। (चित्र 4)

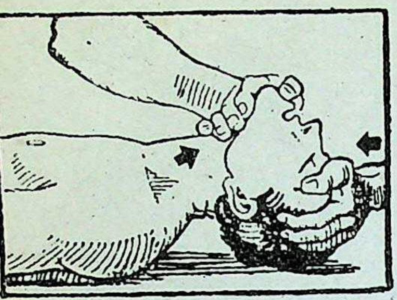

चित्र नं० 2

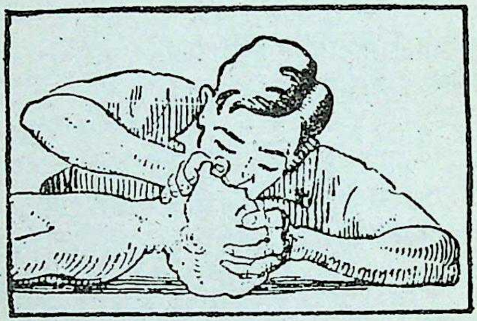

चित्र नं० 3

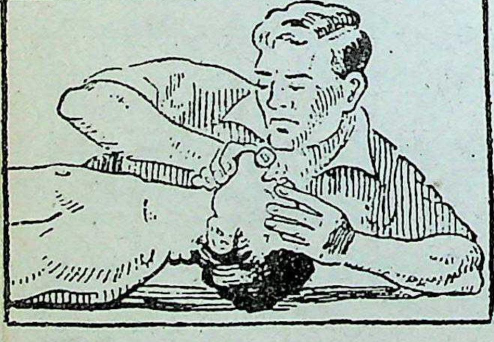

चित्र नं० 4

यदि दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति वयस्क है तो ताकत के साथ प्रति मिनट में लगभग दस बार फूंक भरना चाहिए। यदि वह बच्चा है तो हल्की फूंक प्रति मिनट में लगभग 20 बार भरना चाहिए।

यदि हवा भरने के बाद मुंह से हवा वापस नहीं निकलती है तो इसका अर्थ यह है कि उसके श्वास मार्ग में रुकावट है। अतः उसके सिर को ठीक तरह पीछे की ओर तथा ठोड़ी को ऊपर कर दीजिए। अगर अब भी फूंक भरने पर हवा वापस न निकले तो उस व्यक्ति को करवट के बल लिटा कर उसके कंधों के बीच के स्थानों में कई बार जोर-जोर से थपथपाइए ताकि अगर उसके गले में कोई चीज अटकी हुई हो तो वह निकल कर मुंह में आ जाए। अब उसके मुंह में उंगली डाल कर उस चीज को निकाल दीजिए। अगर बच्चा हो तो अपने घुटने पर उसको औंधा करके रख लें अथवा बच्चे को दोनों टांगों से पकड़ कर उल्टा करके उसके कंधों के बीच में तीन-चार थपकियां लगाएं ताकि श्वास मार्ग में अटकी हुई वस्तु मुह में आ जाए। इस वस्तु को निकाल कर फिर श्वास देना चालू कर दें।

यदि रोगी का मुंह कसकर बन्द है तो उसके होंठ बन्द करके नाक में हवा फूंक सकते हैं। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि मुंह बन्द होने पर भी दांतों के बीच में इतनी जगह रहती है कि हवा अन्दर जा सके।

यदि आपको अपना मुंह उसके मुंह या नाक से मिलाने में आपत्ति हो तो उसके मुंह या नाक पर रूमाल रख कर हवा फूंक सकते हैं। कपड़ा रख लेने से हवा अन्दर जाने या बाहर निकलने में कोई विशेष रुकावट नहीं पड़ती।

आमतौर पर पांच-दस मिनट इसी प्रकार उसके मुंह में हवा भरते रहने से उस व्यक्ति की सांस चालू हो जाती है।

सांस चालू हो जाने के बाद भी काफी समय तक उस व्यक्ति को वहीं लेटा रहने दीजिए। उसे उठाने-बैठाने या कहीं ले जाने की चेष्टा मत कीजिए। यदि अस्पताल ले जा रहे हों तो रास्ते में बराबर इस रीति से कृत्रिम श्वास देते रहें।

जब रोगी स्वयं ही श्वास लेने लगे तो कृत्रिम श्वास देना बन्द कर दें।

हमारे लोकप्रिय प्रकाशन

मेडीकल सैक्स गाइड	—डा० कालीचरन
संभोग कला	—आचार्य दिनेश शास्त्री
कामकला के भेद	—लीमन क्लार्क
विवाहित प्रेम	—मेरी स्टोप्स
अलौकिक शक्तियां	—दिनेश शास्त्री
हिप्नाटिज्म के चमत्कार	—डा० कालीचरन
टेलीरेस्पान्स पावर	—जान डि पाल
चमत्कारी मन्त्र तन्त्र और टोटके	—के०ए० दुबे 'पदमेश'
हस्तरेखा विज्ञान	—कीरो
अंक विद्या	—कीरो
तन्त्र विद्या	—पं० लक्ष्मी नारायण शर्मा
मन्त्र विद्या	—सत्यवीर शास्त्री
विवाहित जीवन में सैक्स पावर	—डा० कालीचरन
कराते कुंगफू फाइटिंग कोर्स	
बिना हथियारों के आत्मरक्षा	
रत्न विज्ञान	—खान आलीजाह
मन्त्र तन्त्र साधना	—पं० लक्ष्मी नारायण शर्मा
सम्पूर्ण योग शिक्षा (अष्टांग योग)	—पं.शिवकुमार आयुर्वेदाचार्य
काम सूत्र	—वात्स्यायन
तैरना सीखिए	—गोरख प्रसाद
शौकिया चित्रकारी	—एल० ए० डाउस्ट
कार्टून कला	—एल० ए० डाउस्ट
धन कमाने की 101 ठोस स्कीमें	यन्त्रस्थ
स्माल स्केल इन्डस्ट्रीज	यन्त्रस्थ

आपके नगर के पुस्तक-विक्रेताओं तथा रेलवे बुक स्टालों पर उपलब्ध हैं।
यदि न मिलें तो 10 रु० एडवांस भेजकर वी० पी० द्वारा हमसे मंगा लें।

प्रकाशक मेडीकल प्रेस

H. No. 720, गली डेसू ट्रांसफार्मर, छज्जूपुर मार्ग,
बाबरपुर, शाहदरा, दिल्ली-110032